# व्यावहारिक हिन्दी

लखनऊ

## पाठ्यपुस्तक

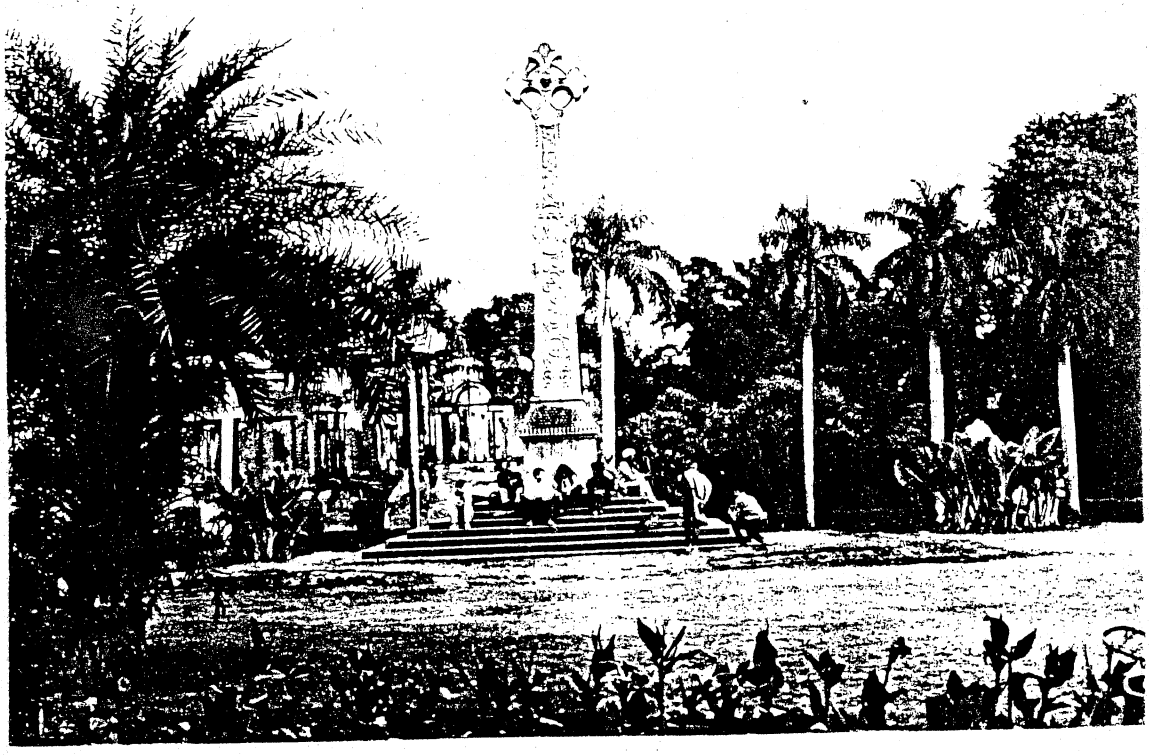

25 *Bismillah* written in Tughra in the shape of a falcon. Calligrapher and place of origin unknown

# तमाशा

- मंटो -

दो-तीन रोज़ से हवाई जहाज़, सियाह उकाबों की तरह पर फैलाये खामोश फिज़ा में मँडरा रहे थे, जैसे वे किसी शिकार की तलाश में हों, सुर्ख आँधियाँ वक्त-बेवक्त किसी आने वाले खूनी हादसे का पैग़ाम ला रही थीं, सुनसान बाज़ारों में सशस्त्र पुलिस की गश्त एक अजीब भयावह समाँ पेश कर रही थी। वे बाज़ार, जो आज से कुछ अरसे पहले लोगों के हुजूम से भरे हुआ करते थे, अब किसी नामालूम खौफ की वजह से सूने पड़े थे—शहर की फिज़ा पर एक रहस्यमयी खामोशी छायी हुई थी और भयानक खौफ राज कर रहा था।

खालिद घर की खामोश और स्तब्ध फिज़ा से सहमा हुआ अपने वालिद के करीब बैठा बातें कर रहा था, 'अब्बा, आप मुझे स्कूल क्यों नहीं जाने देते ?'

'बेटा, आज स्कूल में छुट्टी है।'

'मास्टर साहब ने तो हमें बताया ही नहीं, वह तो कल कह रहे थे कि जो लड़का आज स्कूल का काम खत्म करके अपनी कापी नहीं दिखायेगा, उसे सख्त सज़ा दी जायेगी।'

'वह बतलाना भूल गये होंगे।'

'आपके दफ्तर में छुट्टी होगी ?'

'हाँ, हमारा दफ्तर भी आज बंद है।'

'चलो अच्छा हुआ, आज आपसे कोई अच्छी-सी कहानी सुनूँगा।'

यह बातें हो रही थीं कि तीन-चार जहाज़ चीखते हुए उनके सिर पर से गुज़र गये। खालिद उनको देखकर बहुत भयभीत हो गया। वह तीन-चार रोज़ से इन जहाज़ी उड़ानों को गौर से देख रहा था, मगर किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सका। वह हैरान था कि ये जहाज़ सारा दिन धूप में क्यों चक्कर लगाते रहते हैं। वह उनकी रोज़ाना की गतिविधि से सख्त तंग आकर बोला, 'अब्बा, मुझे इन जहाज़ों से सख्त खौफ मालूम हो रहा है। आप इनके चलाने वालों से पहले कह दें कि वे हमारे घर पर से न गुज़रा करें।'

'खौफ ? कहीं पागल तो नहीं हो गये खालिद !'

'अब्बा, ये जहाज़ खौफनाक हैं। आप नहीं जानते ये किसी न किसी दिन हमारे घर पर गोला फेंक देंगे। कल सुबह मामा अम्मीजन से कह रही थी कि इन जहाज़ वालों के पास बहुत-से गोले हैं। अब्बा, अगर उन्होंने इस किस्म की कोई शरारत की तो याद रखें, मेरे पास भी एक बन्दूक है, वही जो आपने मुझे पिछली ईद पर लाकर दी थी।'

खालिद के अब्बा ने अपने लड़के के गैरमामूली साहस पर हँसते हुए कहा, 'मामा तो पागल है, मैं उससे कहूँगा कि वह घर में ऐसी बात क्यों करती है। इत्मीनान रखो, वह ऐसी बात कभी नहीं करेगी।'

अपने वालिद से रुखसत होकर खालिद अपने कमरे में चला गया और हवाई बन्दूक निकालकर निशाना लगाने का अभ्यास करने लगा ताकि उस रोज़, जब हवाई जहाज़ वाले गोले फेंकें, तो उसका निशाना चूक न जाये और वह पूरी तरह बदला ले सके। काश ! प्रतिशोध का यही नन्हाँ जज्बा हर शख्स में पैदा हो जाये।

इसी अर्से में जबकि एक नन्हाँ बच्चा अपनी बदला लेने की फिक्र में डूबा हुआ तरह-तरह से मनसूबे बाँध रहा था, घर के दूसरे हिस्से में खालिद का अब्बा बीवी के पास बैठा हुआ मामा को हिदायत कर रहा था कि वह आगे से घर में इस किस्म की कोई बात न करे जिससे खालिद को दहशत हो। मामा को और बीवी को इस किस्म की ताकीद करके वह अभी बड़े दरवाज़े से बाहर जा रहा था कि खालिद एक भयानक खबर लाया कि शहर के लोग बादशाह के मना करने पर भी शाम के करीब एक आम जलसा करने वाले हैं। और यह आशा की जाती है कि कोई न कोई दुर्घटना ज़रूर पेश आकर रहेगी।

खालिद का अब्बा यह खबर सुनकर बहुत खौफज़दा हुआ। अब उसे यकीन हो गया कि माहौल का गैरमामूली सुकून, जहाज़ों की उड़ान, बाज़ारों में सशस्त्र पुलिस की गश्त, लोगों के चेहरों पर उदासी का आलम और खूनी आँधियों की आमद किसी खौफनाक हादसे के आसार थे। वह हादसा किस किस्म का होगा यह खालिद के अब्बा की तरह किसी को भी मालूम नहीं था। मगर फिर भी सारा शहर किसी नामालूम खौफ में लिपटा हुआ था। बाहर जाने के ख्याल को तर्क करके खालिद का अब्बा अभी कपड़े भी नहीं बदल पाया था कि जहाज़ों का शोर बुलन्द हुआ। वह सहम गया। उसे लगा, जैसे सैकड़ों इन्सान एक-सी आवाज़ में दर्द की शिद्दत से कराह रहे हैं। खालिद जहाज़ों का शोरगुल सुनकर अपनी हवाई बन्दूक सम्भालता हुआ कमरे से बाहर दौड़ आया और उन्हें गौर से देखने लगा, ताकि वे जिस वक्त गोला फेंकने लगें, तो वह अपनी हवाई बन्दूक की मदद से उन्हें नीचे गिरा दे। इस वक्त इस छह साला बच्चे के चेहरे पर मज़बूत इरादा और

दृढ़ निश्चय के लक्षण प्रगट थे जो कम हकीकत बन्दूक का खिलौना हाथ में थामे एक वीर सिपाही को शर्मिंदा कर रहा था। मालूम होता था कि वह आज इस चीज़ को, जो उसे अरसे से खौफ़ज़दा कर रही थी, मिटाने पर तुला हुआ है। खालिद के देखते-देखते एक जहाज़ से कुछ चीज़ गिरी, जो कागज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों के समान थी—गिरते ही वे टुकड़े हवा में पतंगों की तरह उड़ने लगे। इनमें से चन्द खालिद के मकान की छत पर भी गिरे। खालिद भागता हुआ ऊपर गया और कागज़ उठाकर अपने वालिद के पास ले गया।

'अब्बाजी ! मामा सचमुच झूठ बक रही थी, जहाज़ वालों ने तो गोलों की बजाय ये कागज़ फेंके हैं।'

खालिद के बाप ने वह कागज़ लेकर पढ़ना शुरू किया तो रंग ज़र्द हो गया—होने वाले हादसे की तस्वीर अब उसे साफ तौर पर नज़र आने लगी। उस इश्तहार में साफ लिखा था कि बादशाह किसी को जलसा करने की इजाज़त नहीं देता और अगर उसकी मर्ज़ी के खिलाफ कोई जलसा किया गया तो अंजाम की ज़िम्मेदार स्वयं जनता होगी। अपने वालिद को, इश्तहार पढ़ने के बाद इस कदर हैरान देखकर खालिद ने घबराते हुए पूछा, 'इस कागज़ में यह तो नहीं लिखा कि वे हमारे घर पर गोले फेंकेंगे ?'

'खालिद इस वक्त तुम जाओ···जाओ, अपनी बन्दूक के साथ खेलो।'

'मगर इसमें लिखा क्या है ?'

'लिखा है, आज शाम को एक तमाशा होगा।'

खालिद के बाप ने गुफ्तगू को अधिक बढ़ाने के डर से झूठ बोलते हुए कहा, 'तमाशा होगा।'

'फिर तो हम भी चलेंगे न ?'

'क्या कहा ?'

'क्या इस तमाशे में आप मुझे नहीं ले चलेंगे ?'

'ले चलेंगे, अब जाओ, जाकर खेलो।'

'कहाँ खेलूँ ? बाज़ार में आप जाने नहीं देते। मामा मुझसे खेलती नहीं। मेरा सहपाठी भी तो आजकल यहाँ नहीं आता। अब आप ही बतायें, मैं खेलूँ तो किससे खेलूँ ! शाम के वक्त तमाशा देखने तो ज़रूर चलेंगे न !' किसी जवाब का इन्तज़ार किये बगैर खालिद कमरे से बाहर चला गया और अलग-अलग कमरों में आवारा फिरता हुआ अपने वालिद की बैठक में पहुँचा जिसकी खिड़कियाँ बाज़ार की तरफ खुलती थीं। खिड़की के करीब जाकर वह बाज़ार की तरफ देखने लगा, तो क्या देखता है कि बाज़ार में दुकानें बन्द हैं, मगर आना-जाना जारी है। लोग जलसे में शामिल होने के लिए जा रहे थे। वह सख्त हैरान था कि दुकानें क्यों

बन्द रहती हैं। इस मसले के हल के लिए उसने अपने नन्हें दिमाग पर बहुतेरा ज़ोर दिया, मगर कोई नतीजा न निकाल सका। बहुत सोच-विचार के बाद उसने सोचा कि लोगों ने वह तमाशा देखने की खातिर, जिसके इश्तहार जहाज़ बाँट रहे थे, दुकानें बन्द कर रखी हैं। अब उसने ख्याल किया कि वह कोई निहायत ही दिलचस्प तमाशा होगा, जिसके लिए तमाम बाज़ार बन्द है। इस ख्याल ने खालिद को सख्त बेचैन कर दिया और वह उस वक्त का बेकरारी से इन्तज़ार करने लगा जब अब्बा उसे तमाशा दिखलाने ले चलें।

वक्त गुज़रता गया···वह खूनी घड़ी करीबतर आती गयी।

तीसरे पहर का वक्त था। खालिद, उसका बाप और माँ सहन में चुप बैठे एक-दूसरे की तरफ खामोश निगाहों से ताक रहे थे। हवा सिसकियाँ भरती हुई चल रही थी। तड़ऽऽऽतड़ की आवाज़ सुनते ही खालिद के बाप के चेहरे का रंग कागज़ की तरह सफेद हो गया। ज़बान से मुश्किल से इतना ही कह सका, 'गोली !'

खालिद की माँ भयातिरेक से एक शब्द भी मुँह से न निकाल सकी। गोली का नाम सुनते ही उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे उसकी छाती में गोली उतर रही है। खालिद इस आवाज़ को सुनते ही अपने वालिद की अँगुली पकड़कर कहने लगा, 'अब्बाजी, चलो चलें ! तमाशा तो शुरू हो गया है।'

'कौन-सा तमाशा ?' खालिद के बाप ने अपने खौफ को छुपाते हुए कहा।

'वही तमाशा, जिसके इश्तहार आज सुबह जहाज़ बाँट रहे थे···खेल शुरू हो गया है, तभी तो इतने पटाखों की आवाज़ सुनायी दे रही है।'

'अभी बहुत वक्त बाकी है। तुम शोर मत करो—अब जाओ, मामा के पास जाकर खेलो।' खालिद यह सुनते ही बावर्चीखाने की तरफ रवाना हो गया मगर वहाँ मामा को न पाकर अपने वालिद की बैठक में जाकर खिड़की से बाज़ार की तरफ देखने लगा। बाज़ार आमदोरफ्त बन्द हो जाने की वजह से साँय-साँस कर रहा था। दूर फासले से कुत्तों की दर्दनाक चीखें सुनायी दे रही थीं। कुछ क्षणों के बाद इन चीखों में इन्सानों की दर्दनाक आवाज़ें शामिल हो गयीं। खालिद किसी को कराहते सुनकर बहुत हैरान हुआ। अभी वह इस आवाज़ की जुस्तजू के लिए कोशिश ही कर रहा था कि चौक में उसे एक लड़का दिखायी दिया जो चीखता-चिल्लाता भागता चला आ रहा था। खालिद के कमरे के ठीक सामने वह लड़का लड़खड़ाकर गिरा और गिरते ही बेहोश हो गया। उसकी पिंडली पर गहरा ज़ख्म था जिससे खून का फव्वारा निकल रहा था। यह दृश्य देखकर खालिद बहुत खौफ-ज़दा हुआ। भागकर अपने वालिद के पास आया और कहने लगा, 'अब्बा ! अब्बा ! बाज़ार में एक लड़का गिर पड़ा है। उसकी टाँग से बहुत खून निकल रहा है।'

खालिद का बाप यह सुनते ही खिड़की की तरफ गया और देखा कि वाकई एक नौजवान बाज़ार में औंधे मुँह पड़ा है। बादशाह के खौफ के कारण किसी में इतना साहस नहीं था कि उस लड़के को सड़क पर से उठाकर सामने वाली दुकान के पट्टे पर लिटा दे।

'अब्बा, इस लड़के को किसी ने पीटा है ?'

खालिद का बाप हाँ में सिर हिलाता कमरे के बाहर चला गया।

अब खालिद कमरे में अकेला रह गया। वह सोचने लगा कि इस लड़के को इतने बड़े ज़ख्म से कितनी तकलीफ हुई होगी, जबकि एक दफा उसे चाकू चुभने से ही तमाम रात नींद नहीं आयी थी। उसका बाप और उसकी माँ तमाम रात उसके सिरहाने बैठे रहे थे। इस ख्याल के आते ही उसे ऐसा मालूम होने लगा कि जैसे वह ज़ख्म खुद उसकी पिंडली में है और उसमें बहुत तेज़ दर्द है। वह एकदम रोने लगा।

खालिद के रोने की आवाज़ सुनकर उसकी माँ दौड़ी-दौड़ी आयी और उसको गोद में लेकर पूछने लगी, 'मेरे बच्चे, रो क्यों रहे हो ?'

'मम्मी, उसे किसी ने मारा है।'

'शरारत की होगी उसने !'

'मगर स्कूल में तो छड़ी से सज़ा देते हैं। लहू तो नहीं निकालते।'

'छड़ी ज़ोर से लग गयी होगी।'

'तो फिर क्यों इस लड़के का वालिद स्कूल में जाकर उस्ताद पर खफा न होगा, जिसने उस लड़के को इस कदर मारा है। एक रोज़ जब मास्टर साहब ने मेरे कान खींचकर सुर्ख कर दिये तो अब्बाजी ने हेडमास्टर के पास शिकायत की थी न !'

'इस लड़के का मास्टर बहुत बड़ा आदमी है।'

'अल्लाह मियाँ से भी बड़ा ?'

'नहीं, उनसे छोटा है।'

'तो फिर वह अल्लाह मियाँ के पास शिकायत करेगा।'

'अब देर हो गयी है, चलो सोयें।'

'अल्लाह मियाँ, मैं दुआ करता हूँ कि तू उस मास्टर को, जिसने इस लड़के को पीटा है, अच्छी तरह सज़ा दे और उस छड़ी को छीन ले, जिसके इस्तेमाल से खून निकल आता है···मैंने पहाड़े याद नहीं किये इसलिए मुझे डर है कि कहीं वही छड़ी मेरे उस्ताद के हाथ न आ जाये। अगर तुमने मेरी बात न मानी तो फिर मैं भी तुमसे नहीं बोलूँगा !' सोते वक्त खालिद दिल में दुआ माँग रहा था।

# जो बीत गई सो बात गई

- हरिवंशराय बच्चन -

जो बीत गई सो बात गई !

जीवन में एक सितारा था,
माना, वह बेहद प्यारा था,
वह डूब गया तो डूब गया,
अंबर के आनन को देखो,

कितने इसके तारे टूटे,
कितने इसके प्यारे छूटे,
जो छूट गए फिर कहां मिले,
पर बोलो टूटे तारों पर

कब अंबर शोक मनाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

जीवन में वह था एक कुसुम,
थे उसपर नित्य निछावर तुम,
वह सूख गया तो सूख गया,
मधुवन की छाती को देखो,

सूखीं कितनी इसकी कलियां,
मुर्झाईं कितनी वल्लरियां
जो मुर्झाईं फिर कहां खिलीं,
पर बोलो सूखे फुलों पर

कब मधुवन शोर मचाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

जीवन में मधु का प्याला था,
तुमने तन-मन दे डाला था,
वह टूट गया तो टूट गया,
मदिरालय का आंगन देखो,

कितने प्याले हिल जाते हैं,
गिर मिट्टी में मिल जाते हैं,
जो गिरते हैं कब उठते हैं,
पर बोलो टूटे प्यालों पर
कब मदिरालय पछताता है !
जो बीत गई सो बात गई !

मृदु मिट्टी के हैं बने हुए,
मधुघट फूटा ही करते हैं,
लघु जीवन, लेकर आए हैं,
प्याले टूटा ही करते हैं,
फिर भी मदिरालय के अन्दर
मधु के घट हैं, मधुप्याले हैं,

जो मादकता के मारे हैं,
वे मधु लूटा ही करते हैं,
वह कच्चा पीनेवाला है,
जिसकी ममता घट-प्यालों पर,
जो सच्चे मधु से जला हुआ
कब रोता है, चिल्लाता है !
जो बीत गई सो बात गई !

# रेजीडेंसी

*- लखनऊ नामा से -*

## कोठी बेलीगारद

लखनऊ रेजीडेंसी की प्रसिद्ध इमारत नवाब आसफुद्दौला के शासन काल में अवध दरबार की तरफ से बनवायी गयी थी। नवाब ने अपने अंग्रेज मेहमानों को ठण्डे मुल्क का निवासी जानकर उन्हें दरिया गोमती के किनारे एक ऊंचे टीले पर बसाया था। सन् 1800 में नवाब सआदत अली खां के शासन काल में लखनऊ की रेजीडेंसी पूरी तरह बनकर तैयार हुई। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से रियासत अवध में नियुक्त किये गये। रेजीडेंट ब्रिटिश पदाधिकारी इस भवन में रहा करते थे और तब ही इसे रेजीडेंसी कहा गया। आवश्यकतानुसार समय-समय पर इस इलाके में अनेक भवन बनते रहे और बाद में एक मील तीन फर्लांग 433 फीट का ये पूरा घेरा रेजीडेंसी कहा जाने लगा फिर ये विशेष रूप से योरोपियन लोगों की बस्ती बन गयी।

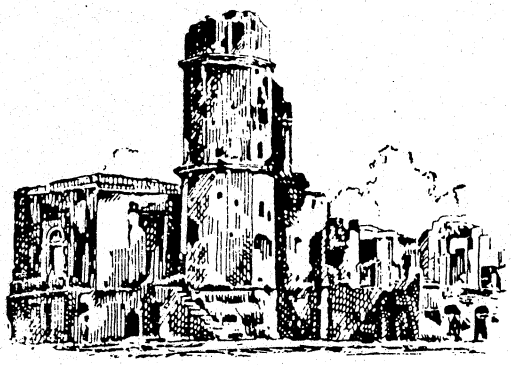

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में ही कर्नल बेली के सम्मान में नवाब सआदत अली खां ने रेजीडेंसी के दक्षिण पूर्व में एक गार्ड आफ आनर स्थापित किया था और तब से ही रेजीडेंसी का ये मुख्य प्रवेश द्वार बेलीगारद गेट कहा जाने लगा।

रेजीडेंसी के मुख्य आवास में आसफी लखौड़ी ईंट और सुर्ख चूने से बने हुए एक दुमंजिले भव्य भवन में बड़े-बड़े कमरे, खूबसूरत बरामदे, एक शानदार पोर्टिको शामिल थे। रेजीडेंसी के नीचे आज भी एक बड़ा आलीशान तहखाना बना हुआ मिलता है। अवध के रेजीडेंट लखनऊ की गर्मियों में लू की लपटों से बचने के लिए इस ठण्डे जमीदोज हाल में आराम फरमाया करते थे। गदर हो जाने पर जूलिया के संरक्षण में तमाम योरोपियन महिलाओं और बच्चों ने इसी तहखाने में उतर कर शरण ली थी। इसी भवन के पूर्वी कमरे में 1 जुलाई सन् 57 को कर्नल पामर की बेटी मिस पामर के पैर में गोली लगी थी। इसी भवन के ऊपर पूर्वी सिरे वाले कमरे में 2 जुलाई सन् 57 को सर हेनरी लारेंस को क्रान्तिकारियों की गोली का निशाना बनना पड़ा था। भवन के पश्चिमी बरामदे की दोनों मंजिलें गिर चुकी हैं। आज इसी इमारत में रेजीडेंसी का माडल रूम है तथा उस काल के अद्वितीय चित्रों का संग्रह है।

**बैकेटिंग हाल**

अवध हुकूमत ने इस इमारत में ब्रिटिश रेजीडेंट का दावतखाना बनवाया था। यह दुमंजिला भवन एक जमाने में कीमती योरोपियन फर्नीचर और चीन के सजावटी सामान से सजा रहता था। इसके मुख्य कक्ष में फव्वारे चला करते थे। इस बैकेटिंग हाल में बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के समय प्रसिद्ध दावतें हुई हैं। गदर के दिनों में इस बिल्डिंग को अस्पताल बना लिया गया था जिसमें रेजीडेंसी के घायलों का उपचार होता था। 8 जुलाई के हमले से सन् 1857 को रेवेरेन्ड मि० पोलीहेम्पटन इस इमारत में बुरी तरह जख्मी हुए थे।

**ट्रेजरी हाउस**

रेजीडेंसी का ये भवन शाही फाटक के एकदम सामने पड़ता था। इस इमारत में योरोपियन अफसरों का विनिमय विभाग स्थापित था। सन् सत्तावन की क्रान्ति में इसके केन्द्रीय भाग को प्रयोगशाला बना लिया गया था और इसमें ऐन्फील्ड कार्टरिजेज़ बनाये जाते थे। इसके निकट ही इस पुराने बरगद के पास रेजीडेंसी का प्रसिद्ध पोस्ट आफिस था जिसमें गदर के दिनों में टूल्स शेल्स का निर्माण होने लगा था।

**डा० फ्रेयरर हाउस**

नीची छत वाला यह मकान डा० फ्रेयरर साहब का निवास स्थान रहा है। 2 जुलाई सन् 1857 को रेजीडेंसी के मुख्य भवन में जख्मी हुए सर हेनरी लारेंस को इसी भवन में रखा गया था और यहीं 4 जुलाई सन् 1857 को उन्होंने दम तोड़ दिया था। जब हैवलाक अंग्रेजों की मदद के लिए कानपुर से कुमुक लेकर लखनऊ आया था तो सर जेम्स आउटरम ने अपना सदर मुकाम स्थापित करने के लिए जो सभा की थी वो इसी भवन में की थी।

**सेंट मेरी चर्च**

सन् 1810 में रेजीडेंसी में गाथिक शैली का सेंट मेरी गिरजाघर बनकर तैयार हुआ था। गदर के दिनों में गिरजे को गल्ले का गोदाम बना लिया गया था। स्वतंत्रता संग्राम में मारे गये रेजीडेंसी के पहले अंग्रेज की कब्र इसी चर्च के साथ बनवायी गयी थी, उसके बाद वो कब्रिस्तान बढ़ता ही चला गया और यही नहीं जंगे आजादी के नतीजे पर धीरे-धीरे भेड़-घर, कील-घर आदि के इलाके भी कब्रिस्तान बनते चले गये। रेजीडेंसी के घेरे में ही नवाब वाजिद अली शाह के भाई नवाब मुस्तफा खां और नवाब सआदत अली खां के बेटे मिर्जा मुहम्मद हसन खां का मजार भी है।

**बेगम वाली कोठी, इमामबाड़ा और मस्जिद**

रेजीडेंसी में बादशाह नसीरुद्दीन हैदर के एक विलायती महल मखदरह आलिया का मकान बेगम वाली कोठी के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें उन्होंने अपना वैधव्य काल बिताया था और यहां उनकी कब्र भी है। उनकी नौमुस्लिम बहन अशरफुन्निसा ने यहां एक इमामबाड़े और एक मस्जिद का निर्माण किया। ये दोनों इमारतें वास्तुकला की दृष्टि से रेजीडेंसी की इमारतों से अलग हैं और अवध की परम्परागत शैली में बनी हुई हैं।

### हेनरी लारेंस स्मारक

लखनऊ रेजीडेंसी में रहने वाले समस्त ब्रिटिश पदाधिकारियों में हेनरी लारेंस जैसा चतुर प्रशासक और बुद्धिमान अधिकारी दूसरा नहीं हुआ। सन् सत्तावन की क्रान्ति में 4 जुलाई को मरने वाले इस अंग्रेज अधिकारी का मजार पहले 51 फीट ऊंचा और एक बहुत बड़े घेरे में बना था। उस बड़े स्मारक से रेजीडेंसी के दूसरे महत्वपूर्ण भागों की भव्यता भंग होती थी। इसलिए सन् 1904 में अंग्रेजी शासन काल में उसे ये नयी रूपरेखा प्रदान की गयी जिसमें सादगी और सौंदर्य दोनों ही हैं।

### स्वतंत्रता संग्राम में महत्व

लखनऊ में हुए 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में रेजीडेंसी का अपना अलग ही महत्व रहा है। बेगम हजरत महल के प्रमुख सहायक राजा जियालाल सिंह की कमाण्ड में लड़े गये चनहट के प्रसिद्ध युद्ध के अगले रोज 30 जून सन् 1857 को सैय्यद बरकत अहमद की कमाण्ड में हिन्दुस्तानियों ने इस विदेशी गढ़ पर गोलाबारी शुरू कर दी थी। क्रान्तिकारियों ने 86 दिनों तक रेजीडेंसी पर अपना कब्जा बनाये रखा और तमाम अंग्रेज परिवार इसमें कैद रहे। 17 नवम्बर सन् 1857 की रात मौलवी अहमदउल्ला शाह ने रेजीडेंसी पर आखिरी हमला किया जिसके दूसरे दिन कालिन कैम्पबेल कानपुर से नयी मददगार सेना लेकर लखनऊ आये और फिर उस पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। सन् 1947 की स्वाधीनता की भूमिका 1857 का स्वतंत्रता संग्राम ही है और लखनऊ रेजीडेंसी उसका जबरदस्त स्मारक है।

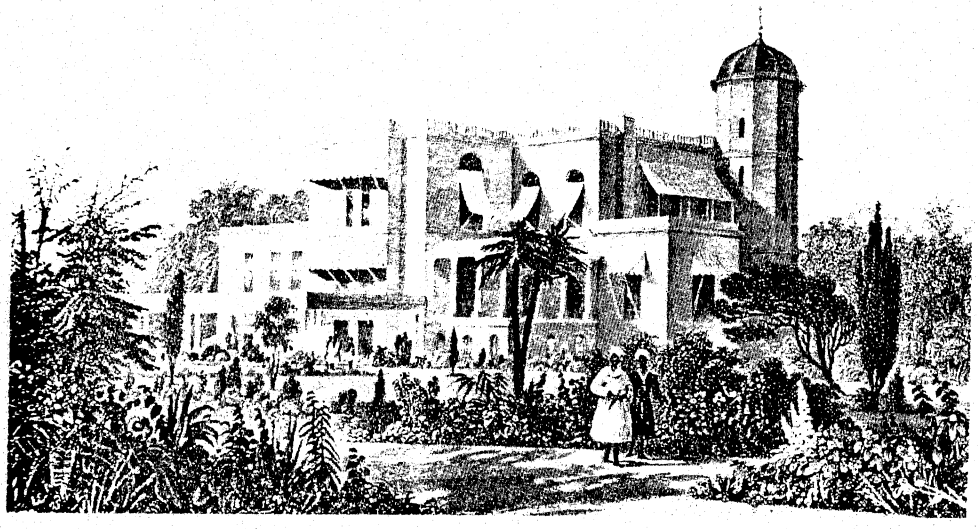

# ईश्वर

- सर्वेश्वरदयाल सक्सेना -

बहुत लम्बी जेबों वाला कोट पहने
ईश्वर मेरे पास आया था
मेरी माँ, मेरे पिता,
मेरे बच्चे और मेरी पत्नी को
खिलौनों की तरह
जेब में डाल कर चला गया
और कह गया
बहुत बड़ी दुनिया है
तुम्हारे मन बहलाने के लिये।
मैंने सुना है,
उसने कहीं खोल रखी है
खिलौनों की दूकान,
अभागे के पास
कितनी ज़रा-सी पूंजी है
रोज़गार चलाने के लिये।

# शत्रु

- अज्ञेय -

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिए और कहा "ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।"

ज्ञान जाग पड़ा। उस ने देखा, संसार अंधकार में पड़ा है, और मानवजाति उस अंधकार में पथ-भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानवजाति को पथ पर लाना होगा, अंधकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सब को सुनाकर कहने लगा, "मैं मसीह हूँ, पैगम्बर हूँ, भगवान् का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक संदेश है।"

लेकिन किसी ने उस की बात नहीं सुनी। कुछ उस की ओर देख कर हँस पड़ते, कुछ कहते, पागल है, अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो। और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

आखिर तंग आकर वह एक अँधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानवजाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है, या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा, "बहन, क्यों रोती हो ?"

उस स्त्री ने कहा, "मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।"

ज्ञान का निश्चय और दृढ़ हो गया। उसने कहा, "तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।" और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा, "धर्म झूठा बंधन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग करता है, अतः हमारा शत्रु है।"

लेकिन किसी ने कहा, "जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने पास रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें, वह समाज से पतित है, नीच है।"

तब लोगों ने उसे समाजच्युत करके बाहर निकाल दिया।

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार का प्रचार करने लगा। वह कहने लगा, "ये धर्मध्वजी, ये पोंगे-पुरोहित-मुल्ला, ये कौन हैं? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बाँध रखने का? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतंत्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें।"

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गए, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

ज्ञान जब जेल काट कर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थाई बनाए रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं। पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब समाज को तोड़ना होगा, तब···

और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने, खाकी कपड़े पहने हुए था। मुख पर झुर्रियाँ पड़ी थीं आँखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा, "आप मुझे कुछ काम दें ताकि मैं अपनी रोज़ी कमा सकूँ। मैं विदेशी हूँ, आपके देश में भूखा मर रहा हूं। कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूँगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।"

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा, "मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ।"

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया। बोला, "अच्छा! मैं आपके दुःख से बहुत दुःखी हूँ। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ।"

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा···

और उसने भूख के लड़ाकों का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था अमीरों से धन छीन कर सब में समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना, इत्यादि लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला, तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़ मँगवाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। वहाँ एकांत में उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूँ कि पेट-भर रोटी का प्रबंध मेरे लिए असंभव है। यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना बेमानी।

एक दिन वह एक किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एक दम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूद कर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौट कर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो, मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि ये खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिंब झलक रहा है। और मानो कह रहा है, "बस, अपने-आप से लड़ चुके ?"

ज्ञान सहम कर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और किले के चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरंतर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।

# रूमी दरवाज़ा

*- लखनऊ नामा* से -

## रूमी दरवाजा

रूमी दरवाजा जो कि लखनऊ का हस्ताक्षर भवन है, अपनी सुरुचिपूर्ण बनावट के लिए हिन्दुस्तान भर में ही नहीं, सारे विश्व में प्रसिद्ध है। इसमें संदेह नहीं कि लखनऊ की नाजुक मिट्टी में ढला हुआ ये सुविख्यात भवन अपने प्रभावशाली स्थापत्य और मजबूती के कारण बड़ी-बड़ी पथरीली ऐतिहासिक इमारतों से टक्कर लेता है। नवाब आसफुद्दौला ने सन् 1775 में लखनऊ को अपनी सल्तनत का मरकजे मसनद बना लिया था। सन् 1784 में उन्होंने रूमी दरवाजा और इमामबाड़ा बनवाना शुरू किया था। ये इमारतें 1786 में बनकर तैयार हुईं। एक बड़े भारी घेरे में बने हुए इन कुल भवनों पर उस जमाने में एक करोड़ की लागत आयी थी जब कि रुपये का तीस सेर गेहूं बिकता था। लेकिन मजे की बात ये कि रूमी दरवाजा जब बन रहा था उस वक्त अवध में अकाल पड़ा हुआ था, इसलिए भूखों को रोटी देने की गरज से आसफुद्दौला ने इन इमारतों की विस्तृत योजना बनायी थी। सवाल ये नहीं था कि नवाब अपनी प्रजा को भोजन दान नहीं कर सकते थे, तकाजा इस बात का था कि तब का आदमी भीख मांगकर या बिना मेहनत की रोटी खाना हराम समझता था, इसलिए अच्छे अच्छों ने हाथ लगाकर रूमी दरवाजे को जमीन पर खड़ा किया। दिन को मामूली मजदूर काम करते थे तो रात के अंधेरे में भले लोग भी काम करने आते थे इसलिए बेकारी के उस दौर में करीब 22 हजार लोगों को इस योजना के अन्तर्गत काम मिला था।

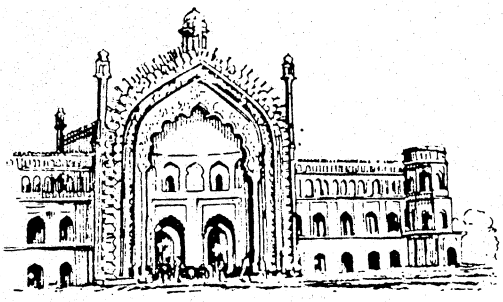

आसफुद्दौला के संसार प्रसिद्ध इमामबाड़े और रूमी दरवाज का वास्तुशिल्प किफायतउल्ला नाम के एक नक्शा नवीस ने बनाया था। यह वही कारीगर था जिसने रूमी दरवाजे के चन्द्राकार अर्धगुम्बद को और इमामबाड़े की लदावदार छत की डाट को बखूबी संभाला था। इन सारी इमारतों में लखौड़ी ईंट और बादामी चूने का कमाल है। इसमें लोहे या लकड़ी का कहीं कोई इस्तेमाल नहीं है। यही विशेषता नवाब आसफुद्दौला और किफायतउल्ला की प्रसिद्धि का कारण बनी।

रूमी दरवाजा किफायतउल्ला के नमूने पर बनवाया जरूर गया लेकिन यह दरवाजा अपनी डिजाइन का अकेला नहीं माना जायेगा। इसके पहले इस स्थापत्य के उदाहरण रहे हैं और इसके बाद तो यह वास्तु एक परम्परा में परिणित हो गया। कहा जाता है कि लखनऊ का यह प्रसिद्ध शाही द्वार कान्सटिनपोल के एक प्राचीन दुर्ग द्वार की नकल पर बनवाया गया था और यही कारण है कि 19वीं सदी में लोग इसको कुस्तुनतुनिया कहकर पुकारा करते थे। कुछ अंग्रेज इतिहासकारों का मत है कि इस्ताम्बूल के सबलाइम पोर्ट का दरवाजा हू-ब-हू इसी प्रकार का था परन्तु प्रसिद्ध ब्रिटिश पर्यटकों का कहना था कि अब वहां ऐसा कोई फाटक नहीं है। हाँ, यह मुमकिन है कि सन् 1453 से पहले कभी रहा हो।

नाइटन अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'प्राइवेट लाइफ आफ एन ईस्टर्न किंग' में लिखता है कि टर्की के सुल्तान के दरबार का प्रवेश द्वार इसी माडल का था और इसीलिए आज तक योरोपियन इतिहासकार इसे 'टर्किश गेट' कहते हैं। भारतीय इतिहासकार पुनर्लेखन संस्थान के अध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक ने अपनी पुस्तक "लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू राज महल हैं" में इसे 'रामद्वार' कहा है और 'रामद्वार' से ही रूमी दरवाजा की व्युत्पत्ति मानी है। एक बार रूमी दरवाजे के नीचे पाइप लाइन बिछाते समय भी पत्थर की एक ऐसी शहतीर मिली थी जिसपर हिन्दू शिल्प स्पष्ट थे। जब उस शहतीर को बाहर निकालने की चेष्टा की जाने लगी तो मालूम हुआ उस पत्थर की प्रत्यञ्चा पर ही इस द्वार का धनुष टिका हुआ है इसलिए उसका निकाला जाना उचित नहीं समझा गया। रूमी दरवाजे को हिन्दू राजाओं से न जोड़कर नवाबी की ही देन माना जाय तो भी इसके इर्द-गिर्द जमीन की तहों में प्राचीन हिन्दू सभ्यता के अवशेष बिछे पड़े हैं।

लखनऊ की मौजूदा ऐतिहासिक इमारतों में पत्थर की बनी हुई मुगल इमारतों की तरह इंडोसिरेसिनिक कला का प्रभाव बिल्कुल नहीं है। यहां की इमारतें किसी एक शैली से सम्बद्ध नहीं हैं। नवाब आसफुद्दौला के समय से ही इमारतों में गाथिक कला का प्रभाव आने लगा था जो उनके बाद की इण्डोइटालियन इमारतों में बहुत स्पष्ट हो गया। कुछ भी हो, रोम से अनायास जुड़ जाने वाला रूमी दरवाजा रोमन लिपि की तरह भले ही विदेशी वास्तु का प्रतीक मान लिया जाय, इसका मूल प्रभाव भारतीय कला का पोषण करता है।

रूमी दरवाजे की ऊंचाई 60 फीट है। इसके सबसे ऊपरी हिस्से पर एक अठपहलू छतरी बनी हुई है, जहां तक पहुंचने के लिए रास्ता भी बना हुआ है। पश्चिम की ओर से रूमी दरवाजे की रूपरेखा त्रिपोलिया जैसी है जब कि पूर्व की ओर से यह पंचमहल मालूम होता है। दरवाजे के दोनों तरफ तीन मंजिला हवादार परकोटा बना हुआ है, जिसके सिरे पर आठ पहलू वाले बुर्ज बने हुए हैं जिनपर गुम्बद नहीं है। रूमी दरवाजे की सजावट निराली है जिसमें हिन्दू-मुस्लिम कला का सम्मिश्रण देखने को मिलता है। सच पूछा जाय तो यह द्वार ही शंखाकार है, जिसकी मेहराबें कमान की तरह झुकी हुई हैं। बाहरी मेहराब को नागफनों से सजाया गया है जिन्हें कमल दल भी समझा जा सकता है। यह दोनों निशान अवध प्रदेश के सांस्कृतिक चिह्न हैं। इस नगर के निर्माता लक्ष्मण तो शेषावतार माने जाते हैं। जनमेजय का प्रसिद्ध नागयज्ञ भी इसी भूखण्ड से सम्बद्ध बताया जाता है। भरों और राजपूतों ने कमल को अपना प्रमुख मंगल चिह्न माना था। नागफनों के बीच

से सनाल कमल फूलों की सजावट कतार में मिलती है। द्वार के दोनों तरफ कमलासन पर छोटी छतरियां बनायी गयी हैं। अन्दर की मेहराब मुगल परम्परा की शाहजहानी मेहराब है जिसकी सजावट में नागर कला के बेलबूटे बने हुए हैं और उसके शिखर पर फिर एक फूला हुआ कमल बना है। बड़ी मेहराब के साये में ईरानी ताक और ज्यामितीय डिजाइनें भी बनी हुई हैं। अठारहवीं सदी में बनवाया गया ये रूमी दरवाजा बाद में भवन निर्माण कला की एक परम्परा बन गया जिसका अनुकरण समय-समय पर होता रहा।

लखनऊ के तहसीनगंज मुहल्ले में बनी जामा मस्जिद नवाबी की भव्यतम मस्जिद है। विदेशी पर्यटकों एवं इतिहासकारों ने इस मस्जिद के प्रभावशाली विशाल आकार और सजावटी पच्चीकारी की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इस जामा मस्जिद का मुख्य एवं मध्य भाग रूमी दरवाजे की शैली पर बनवाया गया है। यहां भी बाहरी कमानों के साथ कमलमुखी बुर्ज बने हुए हैं। इसी तरह बहराइच में सैय्यद सालार गाजी के मसूद आस्ताने की बनावट भी रूमी दरवाजे की हू-ब-हू नकल पर बनी है। स्मरण रहे कि बहराइच का इलाका अवध क्षेत्र के अन्तर्गत ही आता है। रूमी दरवाजे के स्थापत्य की लोकप्रियता का एक आयाम यह भी है कि अवध से दूर बृज क्षेत्र के प्रधान तीर्थ वृन्दावन में साह बिहारी जी के मन्दिर का गुलाबी पत्थर से बना प्रवेश द्वार भी रूमी दरवाजे की शैली में बना हुआ है। इस मन्दिर के निर्माता साह कुन्दन लाल जी लखनऊ नगर के नामी रईसों में थे और उन्होंने ही अपने नगर का प्रभाव स्थापित करने के लिए मन्दिर के साथ इस दरवाजे का निर्माण किया। लखनऊ शहर में गोमती के किनारे बनवायी गयी नदविया कालेज के नाम से प्रसिद्ध संस्था की इमारत का जो सबसे आकर्षक मुख्य भाग है उसमें रूमी दरवाजे के स्थापत्य का पूरी तरह अनुकरण किया गया है जो दर्शकों पर अपने शिल्प का पूर्ण प्रभाव छोड़ता है।

रूमी दरवाजे के पीछे कभी एक चहारदीवारी हुआ करती थी जिसमें उन अंग्रेज शहीदों की मजारें थीं जो सन् 1857 की जंगे आजादी में किला मच्छी भवन के मोर्चे पर मारे गये थे। इन ब्रिटिश सैनिकों में सार्जेंट लारेंस वर्ग और गर्नर मार्टन की कब्रें प्रमुख हैं, जिनके निशान अब भी बाकी हैं। वहीं गदर की अफरा-तफरी में हलाल हो जाने वाले कुछ बच्चों की याद में भी एक पत्थर लगा हुआ मिलता है।

24 Centre: a name of Allah in Tughra style. Border: verses from the Quran in Naskh script by the Lucknow calligrapher S. Najmul Hasan, 1974

# इमामबाड़ा आसफी

*- लखनऊ नामा से -*

## इमामबाड़ा आसफी

लखनऊ की नवाबी में नवाब आसफुद्दौला की शोहरत और सदाकत के जो डंके बजे थे उसका सबसे बड़ा गवाह आसफुद्दौला का इमामबाड़ा है जो उनकी शानोशौकत को आज भी सारी दुनिया में प्रकट कर रहा है। सन् 1784 के अकाल के बावजूद आसफुद्दौला ने इस किले जैसी इमारत को बनवाया था और 6 बरस में तैयार हुआ था। इस तिलिस्मी

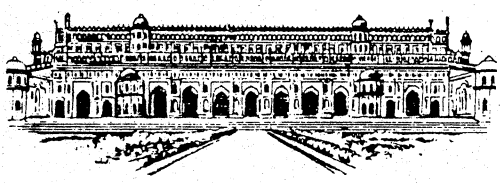

इमारत के साथ-साथ न जाने कितनी कहानियां जुड़ी पड़ी हैं। बड़ा इमामबाड़ा इण्डोसिरेसिनिक वास्तुकला की एक लाजवाब मिसाल है और नवाबी की सबसे शानदार इमारत है। इस इमामबाड़े में मुगल और राजपूत स्थापत्य का खूबसूरत मेल-मिलाप देखने को मिलता है साथ ही साथ गाथिक शैली की झलक भी है। इस इमारत के लिए पहले से ही नवाब का यह विचार था कि यह इमारत किसी इमारत की नकल न हो और कुछ ऐसे ढंग की हो जैसी दुनिया में पहले कभी कोई इमारत न बनी हो।

इमामबाड़े का नक्शा किफायतउल्ला शाहजहानाबादी ने तैयार किया था जिसकी सबसे बड़ी खूबी उसका भीतरी विस्तार है। इस एक आयताकार भवन में उस जमाने की इमारती कमाल के वो-वो करतब दिखाये गये हैं कि ये इमारत आज तक सारी दुनिया में अजूबा बनी हुई है। इसमें संसार का वह सबसे बड़ा हाल है जिसमें न खंभे हैं न लोहा है और न लकड़ी का इस्तेमाल किया गया है। 163 फुट लम्बे, 53 फुट चौड़े और 50 फुट ऊंचे इस हाल की छत कमानदार डाटों से बनी हुई है और इसे बखूबी रोका गया है। इस लदावदार छत के ऊपर बनी हुई भूलभुलैया किफायतउल्ला के खयालों की तस्वीर है। इस भूलभुलैया में 489 दरवाजे एक जैसे बने हुए हैं जो उसे मधुमक्खी के छत्ते जैसी जालदार और अनोखी डिजाइन देते हैं। इस डिजाइन ने न सिर्फ इमारत को हवादार और रोशनी-दार बनाया है बल्कि साथ ही साथ छत के वजन को भी समेट लिया है। बीच वाले हाल में आसफुद्दौला का मजार है। इस हाल के दोनों तरफ गोल कमरे हैं जिनमें से एक सूरजमुखी कमरा कहा जाता है और दूसरा खरबूजे वाला कमरा कहा जाता है। आगे-पीछे 60 गज लम्बे, 20 गज अर्ज वाले बरामदे हैं। पीछे का बरामदा शाहनशीन बना हुआ है और आगे के बरामदे में मजलिसें होती हैं।

नवाब आसफुद्दौला ने अपने नक्कारखाने के साथ-साथ मछलियों के जोड़े बनवाकर उस जमीन पर बसने वाली बुढ़िया की एक यादगार रखी है और अपने उदार स्वभाव का परिचय दिया है। सामने के सहन में चारों तरफ से गुलाम गर्दिशों का लम्बा और खूबसूरत सिलसिला है। इमामबाड़े के सामने जीना-दर-जीना सहन है जो त्रिपोलियों के साथ इसकी शानोशौकत को दुगुना कर देते हैं। इमामबाड़े की छत पर कंगूरों, झरोखों और नालदार कमल के फूलों की कतार बहुत ही खूबसूरत मालूम होती है।

बड़े इमामबाड़े की सजावट के लिए तमाम सामान विलायत से मंगवाया गया था और किसी जमाने में यह इमामबाड़ा ऐसा न था जैसा कि आज दिखता है। सन् 1824 में बिशप हेबर जब लखनऊ आया तो उसने इमामबाड़े के साथ एक खूबसूरत चिड़ियाघर भी कायम किया था। इस इमामबाड़े की सजावट के लिए डा० फिल्टन के द्वारा एक लाख रुपये के झाड़ फानूस विलायत से मंगवाये गये थे। लेकिन अफसोस कि बेल्जियम से आने वाला बेशकीमती कांच का सामान जब तक लखनऊ पहुंचा नवाब आसफुद्दौला दम तोड़ चुके थे। फिर भी यह सब सामान करीने से इमामबाड़े में सजवा दिया गया था। बादशाह गाजीउद्दीन हैदर ने जब शाहनजफ बनवाया तो इस इमामबाड़े की कुल सजावट तबाह कर दी। यहां के कीमती झाड़ फानूस, चाँदी के जड़ाऊ ताजिये, चाँदी के अलम, खुरासानी तलवारें, कामदार पगड़ियां, रिसालदारें और मिम्बर सबके सब यहां से उठवा दिये गये और तब से इमामबाड़े का यह जगत प्रसिद्ध हाल आज तक सांय सांय कर रहा है। बादशाह नसीरुद्दीन हैदर ने अपने वक्त में इस इमामबाड़े के सहन संवारे थे।

मिस सिडनी हे ने "हिस्टारिक लखनऊ" में लिखा है कि नवाब आसफुद्दौला की कब्र के पहलू में जो दूसरी कब्र है वह बेगम शमसुन्निसा की नहीं है। उसमें इमामबाड़े का इंजीनियर किफायतउल्ला शाहजहानाबादी दफन है मगर इस बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि मुसाहिबगंज इमामबाड़े के नजदीक एक मस्जिद के घेरे में भी किफायत-उल्ला की मजार बतायी जाती है जो आज भी मौजूद है।

जिस तरह मुगल बादशाहत में बादशाह अकबर को राजा बीरबल से बेपनाह मुहब्बत थी और उसको लड़ाई पर भेजे जाने के बाद वो ज्यादा दिन नहीं जिये ठीक उसी तरह नवाबी में आसफुद्दौला राजा झाऊलाल से बहुत प्रेम करते थे और जब सर जान शोर ने राजा झाऊलाल को बर्खास्त करके अवध से निकाल दिया तो नवाब इस जुदाई का रंज बर्दाश्त न कर सके। दिन-रात शराब पीने लगे और भंग के रंग से अपना दिल बहलाने लगे। धीरे-धीरे अफीम भी उनके मुँह लग गयी। एक दिन उन्होंने अपने हकीम को बुलाया और बात ही बात में पूछ लिया कि वह कौन सा मर्ज है जिसका कोई इलाज आपके पास नहीं है और वह किस तरह पैदा किया जा सकता है ? हकीम ने यों ही कह दिया कि पेट भर खाकर खूब तबियत से नहाना यह मौत का आजमूदा नुस्खा है। बस फिर क्या था, आसफुद्दौला खाना खाकर उठते थे और चुपचाप दरिया गोमती पर घंटों नहाते थे और इस तरह मर्ज ने वो हाथ पांव निकाले की हकीम सादिक खां सिर पटक कर रह गये और उनका इलाज

कामयाब न हो सका। नवाब को जलन्धर (जलोदर) की बीमारी हो गयी। बेटे का यह हाल सुनकर बहू बेगम फैजाबाद से दौड़ी आयीं, आकर सुनहरे बुर्ज में ठहरीं और उम्र भर के गिले शिकवे भुलाकर मरते हुए बेटे के मुँह पर अपने दामन की हवा देने लगीं, जब दोनों आमने-सामने होते तो बहू बेगम बेअख्तियार रोने लगतीं और नवाब की आँखों से भी आँसू टपकने लगते। यह ऐसी मजबूरियों का आलम था जिसमें नवाब अपनी बूढ़ी माँ पर यह नया सितम तोड़कर जा रहे थे और कोई ताकत न थी जो उनको बचा सकने में कामयाब होती।

28 रबी 1212 हिजरी अर्थात् जुमेरात के दिन 21 सितम्बर 1797 को तीसरे पहर तीन बजे नवाब आसफुद्दौला ने अपनी आँखें मूंद लीं। इस समय उम्र महज 51 बरस थी। रात को बड़े इमामबाड़े में लाश लायी गयी। मिर्जा हसन खां के घर से कफन आया और करबले की वो खाके पाक लायी गयी जिसमें नवाब को दफन होना था। वैसे करबले की इस मिट्टी का आयात आसफुद्दौला के ही वक्त में इस कसरत से हुआ था कि मंसूर नगर के सैकड़ों कोठे करबले की खाक से लबालब थे और ऊंट की पीठ पर नजफ अशरफ से तबर्रुक में लायी गयी ये मिट्टी फाजिल नगर की छतों पर भरी हुई थी। आखिर में इसी मिट्टी का बिस्तर देकर और नजफ की खाक की चादर डालकर नवाब को दफन कर दिया गया। बाकी मिट्टी से खाके पाक की मस्जिद का निर्माण किया गया।

नवाब आसफुद्दौला की तरफ से इराक में जनाब मीर सैय्यद अली साहब मुन्तजिम रखे गये थे। उन्होंने उसी तारीख की शबख्वाब में देखा कि एक जनाजा आलीशान आहिस्ता-आहिस्ता रोशनी से जगर मगर करबला शरीफ में दाखिल हो रहा है और इस जनाजे में तमाम फरिश्ते भी शामिल हैं। उनसे सवाल किया गया कि "यह खुशनसीब कौन है" ? तो जवाब मिला, "यह नवाब आसफुद्दौला वज़ीरे हिन्द हैं।" आखिर में लखनऊ से पता किया गया तो मालूम हुआ कि यह खबर सच है और जो कुछ हुआ वो सही था।

Imam Bara of Asaf ud Daula.

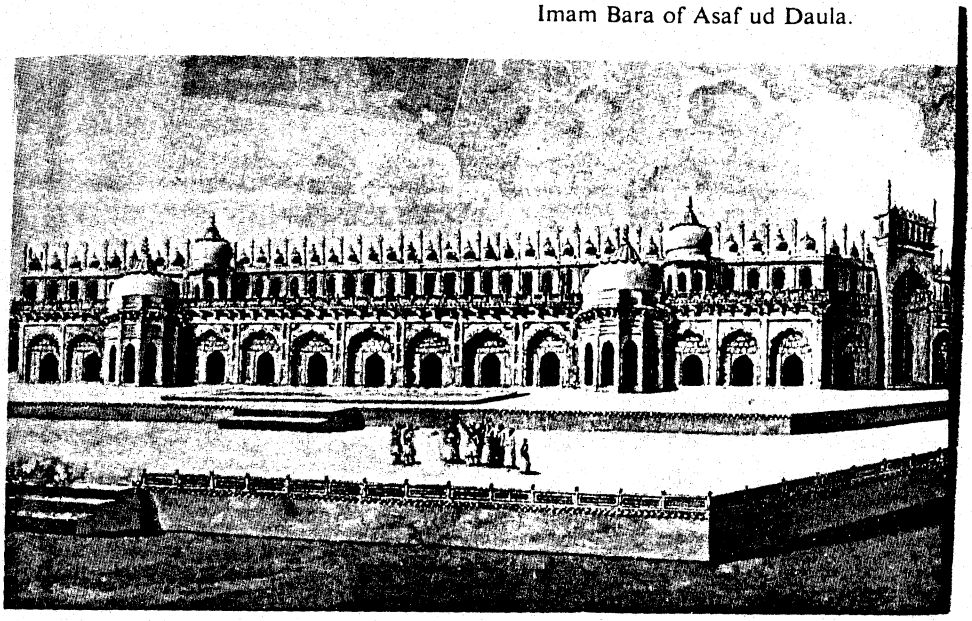

# जुही की कली

- सूर्यकंत त्रिपाठी "निराला" -

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहागभरी- स्नेह-स्वप्न-मग्न
अमल-कोमल-तनु तरुणी जुही की कली,
दृग बन्द किए, शिथिल, पत्रांक में।

अन्वयः विजन-वन-वल्लरी पर, शिथिल पत्रांक में, दृग बन्द किए, सुहागभरी, स्नेह-स्वप्न-मग्न, अमल-कोमल-तनु तरुणी जुही की कली सोती थी।

वासन्ती निशा थी;
विरह-विधुर प्रिया-संग छोड़
किसी दूर-देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।

अन्वयः वासन्ती निशा थी। विरह-विधुर पवन, जिसे (हम) मलयानिल कहते हैं प्रिया-संग छोड़ (कर) किसी दूर-देश में था।

आई याद बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात,
आई याद चाँदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या? पवन
उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन
कुञ्ज-लता-पुञ्जों को पारकर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली-खिली-साथ।

अन्वयः बिछुड़न से मिलन की वह मधुर बात याद आई। चाँदनी की धुली हुई आधी रात याद आई। कान्ता की कम्पित कमनीय गात याद आई।फिर क्या?पवन उपवन-सर--सरित गहन-गिरि-कानन, कुञ्ज-लता-पुञ्जों को पारकर (वहाँ) पहुँचा जहाँ उसन खिली कली के साथ केलि की।

सोती थी,
जाने कहो कैसे प्रिय-आगमन वह?
नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी वल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल।

<u>अन्वय</u>: सोती थी। कहो, वह प्रिय-आगमन कैसे जाने? नायक ने कपोल चूमे, वल्लरी की लड़ी हिंडोल जैसे डोल उठी।

इस पर भी जागी नहीं,
चूक-क्षमा माँगी नहीं,
निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही-
किम्बा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये
कौन कहे?

<u>अन्वय</u>: इस पर भी नहीं जागी, चूक-क्षमा नहीं माँगी। निद्रालस वंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही। किंवा यौवन की मदिरा पिये मतवाली थी, कौन कहे?

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती,
चकित चितवन निज चारों ओर फेर,
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी, खिली
खेल रंग, प्यारे संग।

<u>अन्वय</u>: निर्दय उस नायक ने निपट निठुराई की कि झोंकों की झड़ियों से सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली। गोरे गोल कपोल मसल दिये। चौंक पड़ी युवती। निज चारों ओर चकित चितवन फेर, प्यारे को सेज (के) पास हेर, नम्रमुखी हँसी, प्यारे (के) संग खेल रंग खिली।

# अकबरी दरवाज़ा

*- लखनऊ नामा से -*

## अकबरी दरवाजा

लखनऊ शहर के बीच रहने वालों का सूरज जिधर डूबता है उधर के मशहूर इलाके नक्खास से उतरने वाली ढाल के दायीं तरफ दो रास्तों के नाके पर एक बहुत पुराना, ऊंचा, सीधी-सादी मेहराब वाला जो दरवाजा है वही अकबरी दरवाजा है। अकबरी हुकूमत के इस दरवाजे से वजीर बेगम के बनवाये हुए चौक चौराहे के गोल दरवाजे के बीच किसी वक्त हुस्न का बाजार था और लखनवी तहजीब का बोलबाला था। जिन्दा दिल लोगों की चहलकदमी से ये गली-कूचे गुलजार रहा करते थे। इस माहौल में चारों तरफ इत्र, गुलाब, फूल, गजरों की खुशबू बरसती रहती थी। आँखों में नाजनीनों के जलवे, दिलों में दर्द भरी आवाजें और कानों में घुंघरुओं की मदमाती खनक उभरती रहती थी।

आज भी अकबरी दरवाजे से अन्दर चलने वालों को उस वक्त की कुछ तस्वीरें नजर आयेंगी जिनकी रंगीनी को नयी तहजीब ने धुंधला कर दिया है। यहां चाँदी का वरक कूटने वालों की खट-खट में भी एक लय महसूस होती है। इत्र तेल की भीनी-भीनी गमक और मशहूर पकवानों की महक एक साथ उड़ती रहती है। इस बाजार में गोटे किनारी की तमाम दूकानें हैं, सर्राफ खाना है और अत्तारों की दूकानें हैं, इस तरह यहां सोने-चाँदी की चमक-दमक, चिकन के कारखाने, फूलों की मण्डी, जरी-कामदानी के कारीगर और गाने, बजाने, नाचने वालों के घराने एक साथ मिलते हैं।

इन बाजारों और इन शाही इमारतों के किस्से बहुत पुराने हैं। सन् 1528 में बाबर ने लखनऊ को अपनी हुकूमत में ले लिया था जब कि इससे पहले शर्की राज्य जौनपुर के शासक लखनऊ पर अपनी सल्तनत का सिक्का जमाये हुए थे। मुगल बादशाह हुमायूं के बाद शेरशाह सूरी ने लखनऊ को अपने अधिकार में लिया और इस शहर में एक टकसाल कायम की जिसमें तांबे के सिक्के ढाले जाते थे। यह टकसाल अकबरी दरवाजे के भीतर थी। आज भी वह मुहल्ला टकसाल ही कहलाता है। दरवाजे से कुछ ही दूर अन्दर कूचामीर अनीस में मीर अनीस की ड्योढ़ी और मकबरा है। दूसरी तरफ मिर्जा दबीर के घर की गली और उनकी कब्र है।

बादशाह अकबर के तख्तनशीन होते ही लखनऊ का भाग्य कुछ और चमका। सम्राट अकबर ने इस शहर को बहुत पसंद किया था। चौक के दक्षिण में उन्होंने कई एक मुहल्ले बसाये। उन्होंने लखनऊ के ब्राह्मणों के आदर में एक लाख रुपया बाजपेय यज्ञ के लिए दान में दे दिया था। इस इतिहास प्रसिद्ध बाजपेय यज्ञ के कारण ही लखनऊ के बाजपेई श्रेष्ठ ब्राह्मण कहलाते हैं क्योंकि यह यज्ञ बाजपेई ब्राह्मणों ने ही सम्पन्न किया था तथा वे ही इस शाही सम्मान के अधिकारी हुए थे। चौक के निकट मीनाबाजार के पास दो स्तरों पर बाजपेई बसे हुए थे, जिसके अनुसार उनका वर्ग विभाजन हुआ था। ऊपर वाले ऊंचे के बाजपेई और नीचे वाले खाले के बाजपेई कहे जाते थे।

अकबर के समय में जवाहर खान को अवध का सूबेदार बनाया गया था। इसी काल में चौक के दक्षिणी सिरे पर सादी ईरानी शैली का बना हुआ यह अकबरी दरवाजा निर्मित किया गया। लखौड़ी ईंट चूने से सीधी कमान देकर बनवाये गये इस द्वार में कोई वास्तु सौन्दर्य नहीं है सिवा इसके कि ये मुगल इतिहास से लखनऊ को जोड़ता है। इसे बनवाने के लिए अकबर ने मियां काजी महमूद बिलग्रामी को नियुक्त किया था। कहा जाता है कि ये वास्तव में जाति के नाई थे लेकिन अहलकार की हैसियत से दिल्ली से लखनऊ तशरीफ लाये थे। अकबर के समय में ही यहां शाहगंज, महमूद नगर वगैरह मुहल्ले बसाये गये, बाद में मिर्जा सलीम द्वारा मिर्जा मण्डी नाम का बाजार बनवाया गया। इस नामी अकबरी दरवाजे और गोल दरवाजे के बीच में कप्तान का कुआं नाम का एक प्रसिद्ध स्थान है। यह कप्तान अवध के आखिरी ताजदार नवाब वाजिद अली शाह की फौज के सिपहसालार थे। इनका असली नाम फतेह अली खां था। फूल वाली गली चौक में रहने वाला यह बहादुर जवान बड़ा जबरदस्त लड़ाकू था। लखनऊ की आन, बान और शान पर मिटकर उसने जो नाम पैदा किया है वह किसी बादशाह को भी हासिल न हो सका।

ब्रिटिश सरकार ने 11 फरवरी 1856 को नवाब वाजिद अली शाह को हुकूमते अवध से अलग कर दिया और कलकत्ते रवाना कर दिया। ऐसे नाजुक वक्त में ब्रिटिश अफसरों ने अवध की फौज के कप्तान फतेह अली को पकड़ कर अवध के खजाने के बारे में तमाम पूछताछ की लेकिन वह अपने इरादों के पक्के थे। उन्होंने सब सवालों का जवाब सिर्फ एक खामोशी से दिया। इस तरह खजानें और सल्तनत के भेदों को बताने से साफ इनकार करने पर उन्हें तोप के मुँह पर बांधकर बारूद से उड़ा दिया गया। कप्तान फतेह अली ने मौत को अंगीकार कर लिया मगर अपने वतन और अपने नवाब से गद्दारी नहीं की। चारबाग स्टेशन के पीछे फतेह अली का तालाब उन्हीं के नाम से आबाद है। फतेह अली का मकबरा छोटा जरूर है मगर अनोखी बनावट का है। गोमती के दायें किनारे के सन्नाटे में दौलतगंज के करीब बनी हुई इमारत के खण्डहर अब भी रह गये हैं। यह गोल चौड़ी मीनारनुमा इमारत है जिसपर दोहरी दीवारें थीं। इसकी तीसरी मंजिल पर लोहे की खूबसूरत रेलिंग लगी हुई हैं जिसे हरे रंग से रंगकर और भी आकर्षक बनाया गया था। आठ मेहराबों से घिरे इस हवादार भवन में शहीद फतेह अली खां का मजार है। वह सिपहसालार जो शम-ए-लखनऊ पर जिन्दा जल मरने वाला परवाना था।

# आशीर्वाद

- बालमुकुन्द गुप्त -

तीसरे पहर का समय था। दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था और सामने से संध्या फुर्ती के साथ पाँव बढ़ाये चली आती थी। शर्म्मा महाराज बूटी की धुन में लगे हुए थे। सिलबट्टे से भंग रगड़ी जा रही थी। मिर्च मसाला साफ हो रहा था। बादाम इलायची के छिलके उतारे जाते थे। नागपुरी नारंगियाँ छील छील कर रस निकाला जाता था। इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं; तबीयत भुरभुरा उठी। इधर भंग उधर घटा, बहार में बहार। इतने में वायु का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अन्धेरा छाया। बूंदें गिरने लगीं। साथ ही तड़तड़ धड़धड़ होने लगी, देखा ओले गिर रहे हैं। ओले थमे, कुछ वर्षा हुई। बूटी तैयार हुई "बम भोला" कह के शर्म्माजी ने एक लोटा भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लालडिग्गी पर बड़े लाट मिन्टों ने बंग देश के भूतपूर्व छोटे लाट उडबर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय कलकत्ते में यह दो आवश्यक काम हुए। भेद इतना ही था कि शिवशम्भु शर्म्मा के बरामदे की छत पर बूंदें गिरती थीं और लार्ड मिन्टों के सिर या छाते पर।

भंग छानकर महाराजजी ने खटिया पर लम्बी तानी। कुछ काल सुषुप्ति के आनन्द में निमग्न रहे। अचानक धड़धड़ तड़तड़ के शब्द ने कानों में प्रवेश किया। आँखें मलते उठे। वायु के झोंकों से किवाड़ पुर्जे-पुर्जे हुआ चाहते थे। बरामदे के टीनों पर तड़ातड़ के साथ ठनाका भी होता था। एक दरवाजे के किवाड़ खोलकर बाहर की ओर झाँका तो हवा के झोंके ने दस-बीस बूंदों और दो चार ओलों से शर्म्माजी के श्रीमुख का अभिषेक किया। कमरे के भीतर भी ओलों की एक बौछाड़ पहुँची। फुर्ती से किवाड़ बन्द किये, तथापि एक शीशा चूर हुआ। समझ में आ गया कि ओलों की बौछाड़ चल रही है। इतने में ठन-ठन करके दस बजे। शर्म्माजी फिर चारपाई पर लम्बायमान हुए। कान, टीन और ओलों के सम्मिलन की ठनाठन का मधुर शब्द सुनने लगे। आँखें बन्द, हाथ-पाँव सुख में। पर विचार के घोड़े को विश्राम न था। वह ओलों की चोट से बाजुओं

को बचाता हुआ परिन्दों की तरह इधर-उधर उड़ रहा था ! गुलाबी नशे में विचारों का तार बँधा कि बड़े लाट फुर्ती से अपनी कोठी में घुस गये होंगे और दूसरे अमीर भी अपने-अपने घरों में चले गये होंगे, पर वह चीलें कहाँ गई होंगी ? ओलों से उनके बाज़ू कैसे बचे होंगे, जो पक्षी इस समय अपने अण्डे बच्चों समेत पेड़ों पर पत्तों की आड़ में हैं या घोंसलों में छिपे हुए हैं, उन पर क्या गुजरी होगी। जरूर झड़े हुए फलों के ढेर में कल सवेरे इन बदनसीबों के टूटे अण्डे, मरे बच्चे और इनके भीगे सिसकते शरीर पड़े मिलेंगे। हाँ, शिवशम्भु को इन पक्षियों की चिन्ता है, पर यह नहीं जानता कि इस अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परिपूरित महानगर में सहस्रों अभागे रात बिताने को झोंपड़ी भी नहीं रखते। इस समय सैकड़ों अट्टालिकाएँ शून्य पड़ी हैं। उनमें सहस्रों मनुष्य सो सकते, पर उनके ताले लगे हैं और सहस्रों में केवल दो-दो चार-चार आदमी रहते हैं। अहो, तिस पर भी इस देश की मट्टी से बने हुए सहस्रों अभागे सड़कों के किनारे इधर-उधर की सड़ी और गीली भूमियों में पड़े भीगते हैं। मैले चिथड़े लपेटे वायु वर्षा और ओलों का सामना करते हैं। सवेरे इनमें से कितनों ही की लाशें जहाँ-तहाँ पड़ी मिलेंगी। तू इस चारपाई पर मौजें उड़ा रहा है।

आन की आन में विचार बदला, नशा उड़ा, हृदय पर दुर्बलता आई। भारत ! तेरी वर्तमान दशा में हर्ष को अधिक देर स्थिरता कहाँ ? कभी कोई हर्षसूचक बात दस-बीस पलक के लिये चित्त को प्रसन्न कर जाय तो वही बहुत समझना चाहिए। प्यारी भंग ! तेरी कृपा से कभी-कभी कुछ काल के लिये चिन्ता दूर हो जाती है। इसी से तेरा सहयोग अच्छा समझा है। नहीं तो यह अधबूढ़ा भंगड़ क्या सुख का भूखा है। घावों से चूर जैसे नींद में पड़कर अपने कष्ट भूल जाता है अथवा स्वप्न में अपने को स्वस्थ देखता है, तुझे पीकर शिव-शम्भु भी उसी प्रकार कभी-कभी अपने कष्टों को भूल जाता है !

चिन्ता स्रोत दूसरी ओर फिरा। विचार आया कि काल अनन्त हैं। जो बात इस समय है, वह सदा न रहेगी। इससे एक समय अच्छा भी आ सकता है। जो बात आज आठ-आठ आँसू रुलाती है, वही किसी दिन बड़ा आनन्द उत्पन्न कर सकती है। एक दिन ऐसी ही काली रात थी। इससे भी घोर अंधेरी—भादों कृष्णा अष्टमी की अर्द्धरात्रि। चारों ओर घोर अन्धकार—वर्षा होती थी, बिजली कौंदती थी, घन गरजते थे। यमुना उत्ताल तरंगों में बह रही थी ! ऐसे समय में एक दृढ़ पुरुष एक सद्यजात शिशु को गोद में लिये, मथुरा के कारागार से निकल रहा था। शिशु की माता शिशु के उत्पन्न होने के

हर्ष को भूलकर दुःख से विह्वल होकर चुपके-चुपके आँसू गिराती थी, पुकार कर रो भी नहीं सकती थी। बालक उसने उस पुरुष को अर्पण किया और कलेजे पर हाथ रखकर बैठ गई। सुध आने के समय से उसने कारागार में ही आयु बिताई है। उसके कितने ही बालक वहीं उत्पन्न हुए और वहीं उसकी आँखों के सामने मारे गये। यह अन्तिम बालक है। कड़ा कारागार, विकट पहरा, पर इस बालक को वह किसी प्रकार बचाना चाहती है। इसी से उस बालक को उसके पिता की गोद में दिया है कि वह उसे किसी निरापद स्थान में पहुँचा आवे।

वह और कोई नहीं थे, यदुवंशी महाराज वसुदेव थे और नवजात शिशु कृष्ण। उसी को उस कठिन दशा में उस भयानक काली रात में वह गोकुल पहुँचाने जाते हैं। कैसा कठिन समय था। पर दृढ़ता सब विपदों को जीत लेती है, सब कठिनाइयों को सुगम कर देती है। वसुदेव सब कष्टों को सहकर यमुना पार करके भींगते हुए उस बालक को गोकुल पहुँचा कर उसी रात कारागार में लौट आये। वही बालक आगे कृष्ण हुआ, ब्रज का प्यारा हुआ, माँ-बाप की आँखों का तारा हुआ, यदुकुल मुकुट हुआ। उस समय की राजनीति का अधिष्ठाता हुआ। जिधर वह हुआ उधर विजय हुई, जिसके विरुद्ध हुआ उसकी पराजय हुई! वही हिन्दुओं का सर्वप्रधान अवतार हुआ और शिवशम्भु शर्म्मा का इष्टदेव, स्वामी और सर्वस्व। वह कारागार भारत सन्तान के लिये तीर्थ हुआ। वहाँ की धूल मस्तक पर चढ़ाने के योग्य हुई—

बर जमीने कि निशानेकफे पाये तां वुवद।
सालहा सिजदये साहिब नजरां ख्वाहद बूद॥[1]

तब तो जेल बुरी जगह नहीं है। "पञ्जाबी" के स्वामी और सम्पादक को जेल के लिए दुःख न करना चाहिए। जेल में कृष्ण ने जन्म लिया है। इस देश के सब कष्टों से मुक्त करनेवाले ने अपने पवित्र शरीर को पहले जेल की मिट्टी से स्पर्श कराया। उसी प्रकार "पञ्जाबी" के स्वामी लाला यशवन्त राय ने जेल में जाकर जेल की प्रतिष्ठा बढ़ाई, भारतवासियों का सिर ऊँचा किया, अग्रवाल जाति का सिर ऊँचा किया। उतना ही ऊँचा, जितना कभी स्वाधीनता और स्वराज्य के समय अग्रवाल जाति का अग्रोहे में था! उधर एडीटर मि०

---

१. जिस भूमि पर तेरा पदचिह्न है, दृष्टिवाले सैकड़ों वर्ष तक उस पर अपना मस्तक टेकेंगे।

अथावले ने स्थानीय ब्राह्मणों का मस्तक ऊँचा किया जो उनके गुरु तिलक को अपने मस्तक का तिलक समझते हैं। सुरेन्द्रनाथ ने बंगाल की जेल का और तिलक ने बम्बई की जेल का मान बढ़ाया था। यशवन्त राय और अथावले ने लाहोर की जेल को वही पद प्रदान किया। लाहोरी जेल की भूमि पवित्र हुई। उसकी धूल देश के शुभचिन्तकों की आँखों का अंजन हुई। जिन्हें इस देश पर प्रेम है, वह इन दो युवकों की स्वाधीनता और साधुता पर अभिमान कर सकते हैं।

जो जेल, चोर डकैतों, दुष्ट-हत्यारों के लिये है जब उसमें सज्जन-साधु, शिक्षित, स्वदेश और स्वजाति के शुभचिन्तकों के चरण स्पर्श हों तो समझना चाहिए कि उस स्थान के दिन फिरे। ईश्वर की उस पर दया दृष्टि हुई। साधुओं पर संकट पड़ने से शुभ दिन आते हैं। इससे सब भारतवासी शोक सन्ताप भूलकर प्रार्थना के लिये हाथ उठावें कि शीघ्र वह दिन आवे कि जब एक भी भारत-वासी चोरी, डकैती, दुष्टता, व्यभिचार, हत्या, लूट-खसोट, जाल आदि दोषों के लिए जेल में न जाय। जाय तो देश और जाति की प्रीति और शुभचिन्ता के लिये। दीनों और पददलित निर्बलों को सबलों के अत्याचार से बचाने के लिये, हाकिमों को उनकी भूलों और हार्दिक दुर्बलता से सावधान करने के लिये और सरकार को सुमन्त्रणा देने के लिए। यदि हमारे राजा और शासक हमारे सत्य और स्पष्ट भाषण और हृदय की स्वच्छता को भी दोष समझें और हमें उसके लिए जेल भेजें तो वैसी जेल हमें ईश्वर की कृपा समझकर स्वीकार करना चाहिए और जिन हथकड़ियों से हमारे निर्दोष देश-बान्धवों के हाथ बंधे, उन्हें हेममय आभूषण समझना चाहिए। इसी प्रकार यदि हमारे ईश्वर में इतनी शक्ति न हो कि वह हमारे राजा और शासकों को हमारे अनुकूल कर सके और उन्हें उदारचित्त और न्यायप्रिय बना सके तो इतना अवश्य करे कि हमें सब प्रकार के दोषों से बचाकर न्याय के लिए जेल काटने की शक्ति दे, जिससे हम समझें कि भारत हमारा है और हम भारत के। इस देश के सिवा हमारा कहीं ठिकाना नहीं। रहें इसी देश में, चाहे जेल में चाहे घर में। जब तक जियें जियें और जब प्राण निकल जायँ तो यहीं की पवित्र मट्टी में मिल जायं।

# घबराहट

- कुँवर नारायण -

आसमान चट्टान सा बोझिल,
जगह-जगह रोशनी के विल,
और यह धड़कता हुआ, छोटा-सा दिल ।

फर्श पर खून के ताजे निशान,
खिड़की पर मुँह रख कर, झाँक रहा बियावान ।

आँखों पर पड़ी हुई अँधेरे की सिल्लियाँ,
बाहर बरामदे में लड़ती हुई बिल्लियाँ ।

पूर्व से हवा का एक झोंका,
सहमा हुआ आस-पास चौंका ।

हवा घर से होकर कुछ इस तरह निकली,
गोया पूरे मकान ने एक गहरी साँस ली ।
साँपों की तरह काले बादल छाने लगे,
तारों को बीन कर खाने लगे !
बिजली की एक चमक,
फिर एक धमक,
इतनी भयानक जैसे मीलों तक बादल नहीं,
शीशे का एक समुद्र लटका हो !
जो किसी पहाड़ से टकरा कर,
अभी-अभी छिटका हो ।
बेतहाशा चारों ओर, पानी गिरने का शोर ।
यकायक मुझे कुछ ऐसा अहसास हुआ,
जैसे किसी ने आहिस्ता से साँकल को छुआ ।
और एक अपरिचित आवाज ने पुकारा,
मैं चुप रहा दुबारा-तिबारा ।
एक अज्ञात भय यह कहता रहा, कि दरवाजा न खोलूँ,
इसी में खैरियत है, चुपचाप पड़ा रहूँ न बोलूँ ।

क्या पता आदमी, ऊपर से ठीक-ठाक हो,
लेकिन अंदर से भेड़िये-सा खतरनाक हो।
एक अज्ञात भय यह कहता रहा, कि दरवाजा न खोलूँ,
इसी में खैरियत है, चुपचाप खड़ा रहूँ न बोलूँ।
क्या पता आदमी, ऊपर से ठीक-ठाक हो,
लेकिन अंदर से भेड़िये-सा खतरनाक हो।
मैं दम साधे पड़ा रहा,
आगन्तुक पानी में खड़ा रहा।
मैं चाहता था वह हार कर चला जाए,
दरवाजे से किसी तरह आयी हुई ज्वाला जाए।
अब बिलकुल शान्ति थी,
लेकिन मन में एक अजीब क्रान्ति थी।
आदमी के वेश में जानवर,
इससे ज्यादा घातक यह डर।
अब बिलकुल शान्ति थी।
लेकिन मन में एक अजीब क्रान्ति थी।
आदमी के वेश में जानवर,
इससे ज्यादा घातक यह डर।
सारी परिस्थिति की एक और सूरत भी थी।
शायद उस आदमी को मदद की जरूरत थी।।

# आसफी मस्जिद

*- लखनऊ नामा से -*

## आसफी मस्जिद

जिस किसी ने भी लखनऊ की भूलभुलइया देखी होगी "मस्जिद आसफिया" जरूर देखी होगी। बड़े ही सुन्दर अनुपात में गुम्बदों मीनार का सरमाया उठाए ये मस्जिद आसफुद्दौला की निराली शानोशौकत की बड़ी लाजवाब नुमाइश करती है। जीनए फिरदौस (स्वर्ग सोपान) की तरह कई पहलों से तराशी हुई इस मस्जिद की सीढ़ियां जीना-दर-जीना नवाबी का रुतबा बुलन्द करती जाती हैं। आसफी मस्जिद को अवध बिल्डिग आर्ट स्कूल का सुन्दरतम नमूना कहना कुछ गलत न होगा। लखनऊ की जामा मस्जिद आकार-प्रकार में बड़ी होकर और सजावटी आयामों से लदी-फंदी होकर भी इस मस्जिद का कुछ अर्थों में सामना नहीं कर सकती।

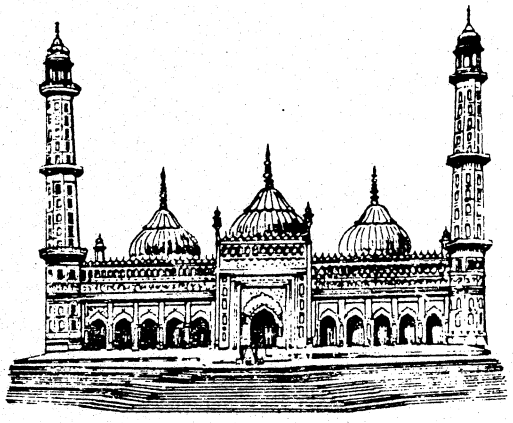

इस मस्जिद की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सादगी और इमारत के विभिन्न अवयवों में सुन्दर अनुपात का होना है। मस्जिद के शानदार गुम्बद नाशपाती के आकार के बने हुए हैं और उनके साथ अठ पहलू मीनारें बड़ा अच्छा मेलजोल रखती हैं। मस्जिद के सामने 11 दर कतार में बने हैं जिनमें मध्य स्थित बड़े आकार के प्रमुख द्वार को विस्तार के साथ सजाया गया है। सारी इमारत में अवध की परम्परागत मेहराबों और स्टूको वर्क का बेहतरीन प्रयोग किया गया है। लखौड़ी ईंट, चूने और गारे के इस्तेमाल से बनी हुई ये मस्जिद इमामबाड़े की भव्यता में और चार चाँद लगाती है।

एक दिन की बात है नवाब आसफुद्दौला अपने महल के बरामदे में बैठे हुये थे। उनके हाथ में एक विलायती पिस्तौल थी और आसमान पर एक चील लहरा रही थी। एकाएक नवाब उस चील पर निशाना साधने लगे मगर वह गोश्तखोर परिन्दा बाज नहीं आया, कभी बायें निकल गया तो कभी दायें।

एक पहरेदार ड्योढ़ी के नीचे खड़ा था। उसकी समझ में यह आया कि नवाब साहब शायद शिकार करना चाहते हैं इसलिए उनकी हाजिर हुजूरी में उस निशानेबाज ने अपनी बन्दूक चला दी और चील को जमीन चटा दी।

अब क्या था नवाब ने चश्मे गजब से उधर देखा कि "मेरा शिकार मार लेना कोई आसान बात नहीं।" ये वही नवाब आसफुद्दौला थे जिन्होंने तराई के जंगलों में आठ शेर मारे थे और नया कोट (बुटवल बहराइच) के करीब उनके निशाने का एक शेर कर्नल बेली साहब ने न मार लिया होता तो वो "नौशेरवां" कहलाते। खैर, तो नवाब साहब आग बबूला हो गये कि आखिर उस बदजात नौकर ने यह गुस्ताखी क्यों कर की और आन की आन में उस नौजवान पर छर्रे वाली पिस्तौल चला दी। गोली पहरेदार की जांघ में लगी। वह बेचारा घायल होकर अपने घर की तरफ लौट चला।

नवाब के नायब मिर्जा हसन खां, जो कहीं से आ रहे थे, उसे रास्ते में मिले। उसका जब यह हाल देखा तो फौरन नवाब से आकर कहा "हुजूर, बड़ा सितम हो गया, जो गरीब आपकी पिस्तौल का निशाना बना है वह कौम का सैय्यद है। आलम पनाह जानते हैं कि सैय्यद को तकलीफ पहुंचाना बड़ा गुनाह है।"

यह सुनना था कि गरीब परवर नंगे पैरों उसके मकान तक गये और उसे उठाकर शीशमहल में ले आये। बड़े-बड़े तबीब उसके इलाज में लग गये। उसके पलंग के ऐताने-पैताने तमाम खवास खादिम तैनात हो गये। इस हादसे ने उस गरीब की किस्मत का पासा ही पलट दिया। जहां वह पहरेदार चंगा हुआ तो उसे सिपाही से रिसालदार बना दिया गया। दरबार में उसका मरतबा इस कदर बढ़ गया कि शहर लखनऊ में सौ सवार उसकी अरदली में चलते थे।

नवाब आसफुद्दौला की निगाहे करम से तो लोग मालामाल होते ही थे, जो उनके सितम का निशाना बन जाता था उसकी किस्मत के सितारे भी इस तरह चमक उठते थे।

आसफुद्दौला की दानशीलता दिन-ब-दिन बढ़ती ही चली गयी थी। उन्होंने अक्सर अपने मतलब का ख्याल न करके और किसी की जरूरत का ख्याल करके गरीब दुकानदारों की पूरी की पूरी दुकान का सामान खरीद लिया था। यहीं नहीं उन्होंने लाख दानों की एक तस्बीह (सुमिरनी) पूरे एक लाख में खरीदी थी। उनके वक्त में आसानी से कोई हाथ नहीं फैलाता था। बड़ा इमामबाड़ा भी उनके इमदाद का शाहकार माना जाता था। इस सिलसिले में उन्होंने अपने खजाने और भविष्य का भी ध्यान नहीं रखा।

आसफुद्दौला के इस स्वभाव का फायदा उठाकर उनके तमाम नायब और मुसाहिब रईस होते चले गये और खजाने की रकम के साथ अच्छा खिलवाड़ किया जाने लगा।

एक बार जब नवाब साहब चौक वाली बारादरी में बैठे ऊंचे आसमान में बदे लड़ती पतंगों का नजारा देख रहे थे, उनके एक खास आदमी ने चुगली करने की गरज से कानों के करीब आकर कहा, "आलीजाह, आपको खबर नहीं कुछ लोग आपकी नकली शाही मुहर का इस्तेमाल करके खूब रकम खा रहे हैं।"

नवाब ने पूछा, "उस मोहर पर किसका नाम है?"

जवाब मिला, "हुजूर आपका और किसका।"

इस पर आसफुद्दौला ने बिना कनकौव्वों पर से निगाह हटाए मुस्करा कर सिर्फ इतना कहा, "मेरे दोस्त इसमें क्या गम है, चाहे मैंने इजाजत दी या न दी, खाते तो मेरे नाम के ही हैं।"

# शतरंज के खिलाड़ी

- प्रेमचंद -

वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब, सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मज़लिस सज़ाता था, तो कोई अफ़ीम की पीनक ही के मजे लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला कौशल में, उद्योग-धंधों में, आहार-व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र-मिस्सी और उपटन का रोज़गार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को ख़बर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिये पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है ; पौ-बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक की फ़क़ीरों को पैसे मिलते, तो वे रोटियाँ न लेकर अफ़ीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफ़ा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलीलें ज़ोरों के साथ पेश की जाती थीं (इस संप्रदाय के लोगों से दुनिया अब भी ख़ाली नहीं है) इसलिये अगर मिर्ज़ा सज्जादअली और मीर रौशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरुसी जागीरें थीं ; जीविका की कोई चिंता न थी ; घर में बैठे चख़ौतियाँ करते थे। आख़िर और करते ही क्या? प्रातःकाल दोनों मित्र नाश्ता करके बिसात बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, और लड़ाई के दाव-पेंच होने लगते। फिर ख़बर न होती थी कि कब दोपहर हुई, कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता कि खाना तैयार है। यहाँ से जवाब मिलता—"चलो, आते हैं ; दस्तरख़्वान बिछाओ।" यहाँ तक कि बाबरची विवश होकर कमरे ही में खाना रख जाता था, और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे। मिर्ज़ा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिये उन्हीं के दीवानख़ाने में बाज़ियाँ होती थीं। मगर यह बात न थी कि मिर्ज़ा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से ख़ुश हों।

घरवालों का तो कहना ही क्या, महल्लेवाले, घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेषपूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे– बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। ख़ुदा न करे, किसी को इसकी चाट पड़े, आदमी दीन, दुनिया, किसी के काम का नहीं रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिर्ज़ा की बेगम साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोजकर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर मुशकिल से मिलता था। वह सोती ही रहती थीं, तब तक उधर बाज़ी बिछ जाती थी। और, रात को जब सो जाती थीं, तब कहीं मिर्ज़ाजी घर में आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना ग़ुस्सा उतारती रहती थीं–"क्या पान माँगे हैं? कह दो, आकर ले जायें। खाने की भी फ़ुर्सत नहीं है? ले जाकर खाना, सिर पर पटक दो, खायें, चाहे कुत्ते को खिलावें।" पर दूबदू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से इतना मलाल न था, जितना मीरसाहब से। उन्होंने उनका नाम मीर बिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद मिर्ज़ाजी अपनी सफ़ाई देने के लिये सारा इल्ज़ाम मीरसाहब ही के सिर थोप देते थे।

एक दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होनें लगा। उन्होंने लौंडी से कहा–"जाकर मिर्ज़ा साहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लावें। दौड़, जल्दी कर।" लौडी गई, तो मिर्ज़ाजी ने कहा–"चल अभी आते हैं।" बेगम साहबा का मिज़ाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख़ हो गया। लौडी से कहा–"जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायेंगी।" मिर्ज़ाजी बड़ी दिलचस्प बाज़ी खेल रहे थे ; दो ही किश्तों में मीरसाहब को मात हुई जाती थी। झुँझालकर बोले–"क्या ऐसा दम लबों पर है? जरा सब्र नहीं होता?"

मीर–"अरे तो जाकर सुन ही आइये न। औरतें नाज़ुक मिज़ाज होती ही हैं।"

मिर्ज़ा–"जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ ; दो किश्तों में आपको मात होती है।"

मीर-"जनाब, इस भरोसे न रहियेगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जाय। पर जाइये, सुन आइये। क्यों ख़ामख़्वाह उनका दिल दुखाइयेगा?"

मिर्ज़ा-"इसी बात पर मात ही करके जाऊँगा।"

मीर–"मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइये।"

मिर्ज़ा–"अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर दर्द ख़ाक नहीं है ! मुझे परेशान करने का बहाना है।"

मीर–"कुछ ही हो, उनकी ख़ातिर तो करनी ही पड़ेगी।"

मिर्ज़ा–"अच्छा, एक चाल और चल लूँ।"

मीर–"हर्गिज़ नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।

मिर्ज़ा साहब मजबूर होकर अंदर गये, तो बेगम साहबा ने त्योरियाँ बदलकर, लेकिन कराहते हुए, कहा–"तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है ! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम नहीं लेते ! नौज कोई तुम जैसा आदमी हो !"

मिर्ज़ा–"क्या कहूँ, मीरसाहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाकर आया हूँ।"

बेगम–"क्या जैसे यह ख़ुद निखट्टू हैं, वैसे ही सब को समझते हैं? उनके भी तो बाल-बच्चे हैं ; या सबका सफ़ाया कर डाला?"

मिर्ज़ा–"बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है, तब मज़बूर होकर मुझे भी खेलना ही पड़ता है।"

बेगम–"दुतकार क्यों नहीं देते?"

मिर्ज़ा–"बराबर के आदमी हैं,उम्र में, दर्ज़े में मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिज़ा करना ही पड़ता है।"

बेगम–"तो में ही दुतकारे देती हूँ। नाराज़ हो जायेंगे, हो जायें। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रुठेंगी, अपना सुहाग लेंगी।–हिरिया, जा, बाहर से शतरंज उठा ला। मीरसाहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे, आप तशरीफ़ ले जाइये।"

मिर्ज़ा–"हाँ-हाँ, कहीं ऐसा ग़ज़ब भी न करना ! जलील कराना चाहती हो क्या ! ठहर हिरिया, कहाँ जाती है।"

बेगम–"जाने क्यों नहीं देते। मेरा ही खून पिये, जो उसे रोके। अच्छा, उसे रोका, मुझे रोको, तो जानूँ।"

यह कहकर बेगम साहबा झल्लाई हुई दीवानख़ाने की तरफ़ चलीं। मिर्ज़ा बेचारे का रंग उड़ गया। बीवी की मिन्नतें करने लगे–"ख़ुदा के लिये, तुम्हें हज़रत हुसैन की क़सम है। मेरी ही मैयत देखें, जो उधर जाय।" लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानख़ाने के द्वार तक गई ; पर एकाएक परपुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध-से गये। भीतर झाँका। संयोग से कमरा खाली था। मीरसाहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिये थे, और अपनी सफ़ाई जताने के लिये बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अंदर पहुँचकर बाज़ी उलट दी, मुहरे कुछ तख़्त के नीचे फेंक दिये, कुछ बाहर ; और किवाड़े अंदर से बंद करके कुंडी लगा दी। मीरसाहब दरवाज़े पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाज़ा बंद हुआ, तो समझ गये, बेगम साहबा बिगड़ गईं। चुपके-से घर की राह ली।

मिर्ज़ा ने कहा—"तुमने ग़ज़ब किया।"

बेगम—"अब मीरसाहब इधर आये, तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी जौ ख़ुदा से लगाते, तो क्या ग़रीब हो जाते! आप तो शतरंज खेलें, और मैं यहाँ चूल्हे-चक्की की फ़िक्र में सिर खपाऊँ! ले जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है?"

मिर्ज़ा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के बदले मीरसाहब के घर पहुँचे और सारा वृत्तांत कहा। मीरसाहब बोले—"मैंने तो जब मुहरे आते देखे, तभी ताड़ गया। फ़ौरन भागा। बड़ी ग़ुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रक्खा है, यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इंतजाम करना उनका काम है; दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?"

मिर्ज़ा—"ख़ैर, यह तो बताइये, अब कहाँ जमाव होगा?"

मीर—"इसका क्या ग़म है। इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है। बस, यही जमें।"

मिर्ज़ा—"लेकिन बेगम साहबा को कैसे मनाऊँगा? जब घर पर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगड़ती थीं, यहाँ बैठक होगी, तो शायद ज़िंदा न छोड़ेंगी"।

मीर-"अजी बकने भी दीजिये; दो-चार रोज़ में आप ही ठीक हो जायेंगी। हाँ, आप इतना कीजिये कि आज से ज़रा तन जाइये।"

## (2)

मीरसाहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से मीरसाहब का घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसीलिये वह उनके शतरंज-प्रेम की कभी आलोचना न करती थीं, बल्कि कभी-कभी मीरसाहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीरसाहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यंत विनयशील और गंभीर है। लेकिन जब दीवानख़ाने में बिसात बिछने लगी, और मीरसाहब दिन-भर घर में रहने लगे, तो उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गई। दिन-भर दरवाज़े पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में भी कानाफूसी होने लगी। अब तक दिन-भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में कोई आवे, कोई जावे, उनसे कुछ मतलब न था। अब आठों पहर की धौस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का। और, हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेगम साहबा से जा-जाकर कहते—"हुजूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई! दिन-भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी कोई खेल है कि सुबह को बैठे तो शाम कर दी! घड़ी-आध-घड़ी दिल बहलाव के लिये खेल लेना बहुत है। ख़ैर,

हमें तो कोई शिकायत नहीं ; हुज़ूर के ग़ुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लावेंगे, मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलने वाला कभी पनपता नहीं ; घर पर कोई-न-कोई आफ़त ज़रुर आती है। यहाँ तक कि एक के पीछे महल्ले-के-महल्ले तबाह होते देखे गये हैं। सारे महल्ले में यही चर्चा होती रहती है। हुज़ूर का नमक खाते हैं, अपने आ़का की बुराई सुन-सुनकर रंज होता है। मगर क्या करें।'' इस पर बेगम साहबा कहतीं—''मैं तो ख़ुद इसको पसंद नहीं करती। पर वह किसी को सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाये।''

महल्ले में भी जो दो-चार पुराने ज़माने के लोग थे, वे आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे—''अब ख़ैरियत नहीं है। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का ख़ुदा ही हाफ़िज़ है। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।''

राज्य में हाकाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फ़रियाद सुननेवाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची आती थी, और वह वेश्याओं में, भाँडों में, और विलासिता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अंगरेज़-कंपनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भीगकर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेज़ीडेंट बार-बार चेतावनी देता था ; पर यहाँ तो लोग विलासिता के नशे में चूर थे ; किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

ख़ैर, मीरसाहब के दीवानख़ाने में शतरंज होते कई महीने गुज़र गये। नये-नये नक़्शे हल किये जाते ; नये-नये क़िले बनाये जाते ; नित-नई व्यूह-रचना होती, कभी-कभी खेलते-खेलते झौड़ हो जाती ; तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती ; पर शीघ्र ही दोनों मित्रों में मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा भी होता कि बाज़ी उठा दी जाती ; मिर्ज़ाजी रुठकर अपने घर चले जाते ; मीरसाहब अपने घर में जा बैठते। पर रात-भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शांत हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानख़ाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनों मित्र बैठे हुए शतरंज की दलदल में गोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फ़ौज का अफ़सर मीरसाहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीरसाहब के होश उड़ गये ! यह क्या बला सिर पर आई ! यह तलबी किस लिये हुई है ! अब ख़ैरियत नहीं नज़र आती ! घर के दरवाज़े बंद कर लिये। नौकरों से बोले—''कह दो, घर में नहीं हैं''।

सवार—''घर में नहीं हैं तो कहाँ हैं?''

नौकर—''यह मैं नहीं जानता। क्या काम है?''

सवार—"काम तुझे क्या बतलाऊँ? हुज़ूर में तलबी है—शायद फ़ौज के लिये कुछ सिपाही माँगे गये हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी ! मोरचे पर जाना पड़ेगा, तो आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा।"

नौकर—"अच्छा तो जाइये, कह दिया जायगा!"

सवार—"कहने की बात नहीं है। मैं कल ख़ुद आऊँगा, साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।"

सवार चला गया। मीरसाहब की आत्मा काँप उठी। मिर्ज़ाजी से बोले—"कहिए जनाब, अब क्या होगा?"

मिर्ज़ा—"बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी तलबी भी न हो।"

मीर—"कंबख़्त कल फिर आने को कह गया है।"

मिर्ज़ा—"आफ़त है, और क्या ! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा, तो बे-मौत मरे।"

मीर—"बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलो ही नही। कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक़्शा जमे। वहाँ किसे ख़बर होगी। हज़रत आकर आप लौट जायेंगे।"

मिर्ज़ा—"वल्लाह, आपको ख़ूब सूझी। इसके सिवा और कोई तदबीर ही नहीं है।"

इधर मीरसाहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं, "तुमने ख़ूब धता बताई।" उसने जवाब दिया—"ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अकड़ और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूलकर भी घर पर न रहेंगे।"

## (3)

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह-अंधेरे घर से निकल खड़े होते। बग़ल में एक छोटी-सी दरी दबाये, डिब्बे में गिलौरियाँ भरे, गोमती-पार की एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसिफ़उद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तंबाकू, चिलम और मदरिया ले लेते, और मसजिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक़्क़ा भर कर शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन-दुनिया की फ़िक्र न रहती थी। 'किश्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूक मालूम होती, तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते, और एक चिलम हुक़्क़ा पीकर फिर संग्राम क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी ख़याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कंपनी की फ़ौजें

लखनऊ की तरफ़ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी ज़रा भी फ़िक्र न थी। वे घर से आते, तो गलियों में होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाज़िम की निगाह न पड़ जाय, जो बेगार में पकड़ जायें। हज़ारों रुपये सालाना की जागीर मुफ़्त ही में हज़म करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खँडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मिर्ज़ा की बाज़ी कुछ कमज़ोर थी। मीरसाहब उन्हें किश्त-पर-किश्त दे रहे थे। इतने में कंपनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिये। यह गोरों की फ़ौज थी, जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिये आ रही थी।

मीरसाहब बोले--"अंगरेज़ी फ़ौज आ रही है ; ख़ुदा ख़ैर करे।"

मिर्ज़ा—"आने दीजिये, किश्त बचाइये। यह किश्त।"

मीर—"ज़रा देखना चाहिए—यहीं आड़ में खड़े हो जायें।"

मिर्ज़ा—"देख लीजियेगा, जल्दी क्या है, फिर किश्त।"

मीर—"तोपख़ाना भी है। कोई पाँच हज़ार आदमी होंगे। कैसे जवान हैं। लाल बंदरों के-से मुँह हैं। सूरत देखकर ख़ौफ़ मालूम होता है।"

मिर्ज़ा—"जनाब, हीले न कीजिये। ये चकमे किसी और को दीजियेगा। यह किश्त।"

मीर—"आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफ़त आई हुई है, और आपको किश्त की सूझी है ! कुछ इसकी भी ख़बर है कि शहर घिर गया, तो घर कैसे चलेंगे?"

मिर्ज़ा—"जब घर चलने का वक़्त आवेगा, तो देखी जायगी—यह किश्त। बस, अब की शह में मात है।" फ़ौज निकल गई। दस बजे का समय था। फिर बाज़ी बिछ गई।

मिर्ज़ा बोले--"आज खाने की कैसे ठहरेगी?"

मीर—"अजी, आज तो रोज़ा है। क्या आपको ज़्यादा भूक मालूम होती है।"

मिर्ज़ा—"जी नहीं। शहर में न-जाने क्या हो रहा है।"

मीर-"शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुज़ूर नवाबसाहब भी ऐशगाह में होंगे।"

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे, तो तीन बज गये। अब की मिर्ज़ाजी की बाज़ी कमज़ोर थी। चार का गजर बज ही रहा था कि फ़ौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली पकड़ लिये गये थे, और सेना उन्हें किसी अज्ञात स्थान को लिये जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी ख़ून नहीं गिरा

था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से, इस तरह ख़ून बहे बिना, न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े-से-बड़े कायर भी आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बंदी बना चला जाता था, और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की चरम सीमा थी।

मिर्ज़ा ने कहा—"हूज़ूर नवाबसाहब को ज़ालिमों ने क़ैद कर लिया है।"

मीर—"होगा, यह लीजिए शह।"

मिर्ज़ा—"जनाब ज़रा ठहरिये। इस वक़्त इधर तबियत नहीं लगती। बेचारे नवाब साहब ख़ून के आँसू रो रहे होंगे।"

मीर-"रोया ही चाहें। यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा—यह किश्त।"

मिर्ज़ा—"किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।"

मीर—"हाँ, सो तो है ही—यह लो फिर किश्त। बस, अब की किश्त में मात है, बच नहीं सकते।"

मिर्ज़ा—"ख़ुदा की क़सम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुःख नहीं होता। हाय, ग़रीब वाजिदअली शाह !"

मीर—"पहले अपने बादशाह को तो बचाइये, फिर नवाबसाहब का मातम कीजियेगा। यह किश्त और मात। लाना हाथ !" बादशाह को लिये हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिर्ज़ा ने फिर बाज़ी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—"आइये, नवाबसाहब के मातम में एक मरसिया कह डालें"। लेकिन मिर्ज़ाजी की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुकी थी। वह हार का बदला चुकाने के लिये अधीर हो रहे थे।

## (4)

शाम हो गई। खँडहर में चमगादड़ों ने चीख़ना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोसलों में चिमटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे हुए थे, मानों दो ख़ून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों। मिर्ज़ाजी तीन बाज़ियाँ लगातार हार चुके थे ; इस चौथी बाज़ी का रंग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके सँभलकर खेलते थे, लेकिन एक-न-एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाज़ी ख़राब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और भी उग्र होती जाती थी। उधर मीरसाहब मारे उमंग के ग़ज़लें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गये हों। मिर्ज़ाजी सुन-सुनकर झुँझलाते और हार की झेप मिटाने के लिये उनकी दाद देते थे। पर ज्यों-ज्यों बाज़ी कमज़ोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकला जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुँझलाने लगे—"जनाब, आप

चाल बदला न कीजिये। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो, एक बार चल लीजिये। यह आप मुहरे पर हाथ क्यों रखे रहते हैं? मुहरे को छोड़ दीजिये। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छूइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज़्यादा लगे, उसको मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली ! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिये।''

मीरसाहब का फ़रज़ी पिटता था। बोले ''मैंने चाल चली ही कब थी?''

मिर्ज़ा—''आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिये—उसी घर में।''

मीर—''उस घर में क्यों रक्खूँ? मैंने हाथ से मुहरा छोड़ा कब था।''

मिर्ज़ा—''मुहरा आप क़यामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी? फ़रज़ी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे !''

मीर—''धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तक़दीर से होती है ; धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।''

मिर्ज़ा—''तो इस बाज़ी में आपको मात हो गई।''

मीर—''मुझे क्यों मात होने लगी।''

मिर्ज़ा—''तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिये, जहाँ पहले रक्खा था।''

मीर—''वहाँ क्यों रक्खूँ? नहीं रखता।''

मिर्ज़ा—''क्यों न रखियेगा? आपको रखना होगा।''

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था, न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिर्ज़ा बोले—''किसी ने ख़ानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके क़ायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किये, आप शतरंज क्या खेलियेगा। रियासत और ही चीज़ है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नहीं हो जाता।'

मीर—''क्या ! घास आपके अब्बाज़ान छीलते होंगे। यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आते हैं।''

मिर्ज़ा—''अजी जाइये भी, ग़ाज़िउद्दीन हैदर के यहाँ बाबर्ची का काम करते-करते उम्र गुज़र गई, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं है।''

मीर—''क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह में कालिख लगाते हो—वे ही बाबर्ची का काम करते होंगे। यहाँ तो हमेशा बादशाह के दस्तरख़्वान पर ख़ाना खाते चले आये हैं।''

मिर्ज़ा—''अरे चल चरकटे, बहुत बढ़-चढ़कर बातें न कर।''

मीर—''ज़बान सँभालिये, बर्ना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ।

यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाईं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला?"

मिर्ज़ा—"आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आइये, आज दो-दो हाथ हो जायें, इधर या उधर।"

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी ज़माना था ; सभी तलवार, पेशकब्ज़, कटार वग़ैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे ; पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अधःपतन हो गया था—बादशाह के लिये, बाहशाहत के लिये क्यों मरे। पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाज़ें आईं। दोनों ज़ख़्म खाकर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़प कर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिये जिनकी आँखों से एक बूँद आँसू न निकला, उन्हीं दोनों प्राणियों ने शतरंज के वज़ीर की रक्षा मे प्राण दे दिये।

अंधेरा हो चला था। बाज़ी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए मानों इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारें तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की टूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूलि-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखती और सिर धुनती थीं।

**('माधुरी', हिन्दी मासिक पत्रिका, अक्तूबर, 1924)**

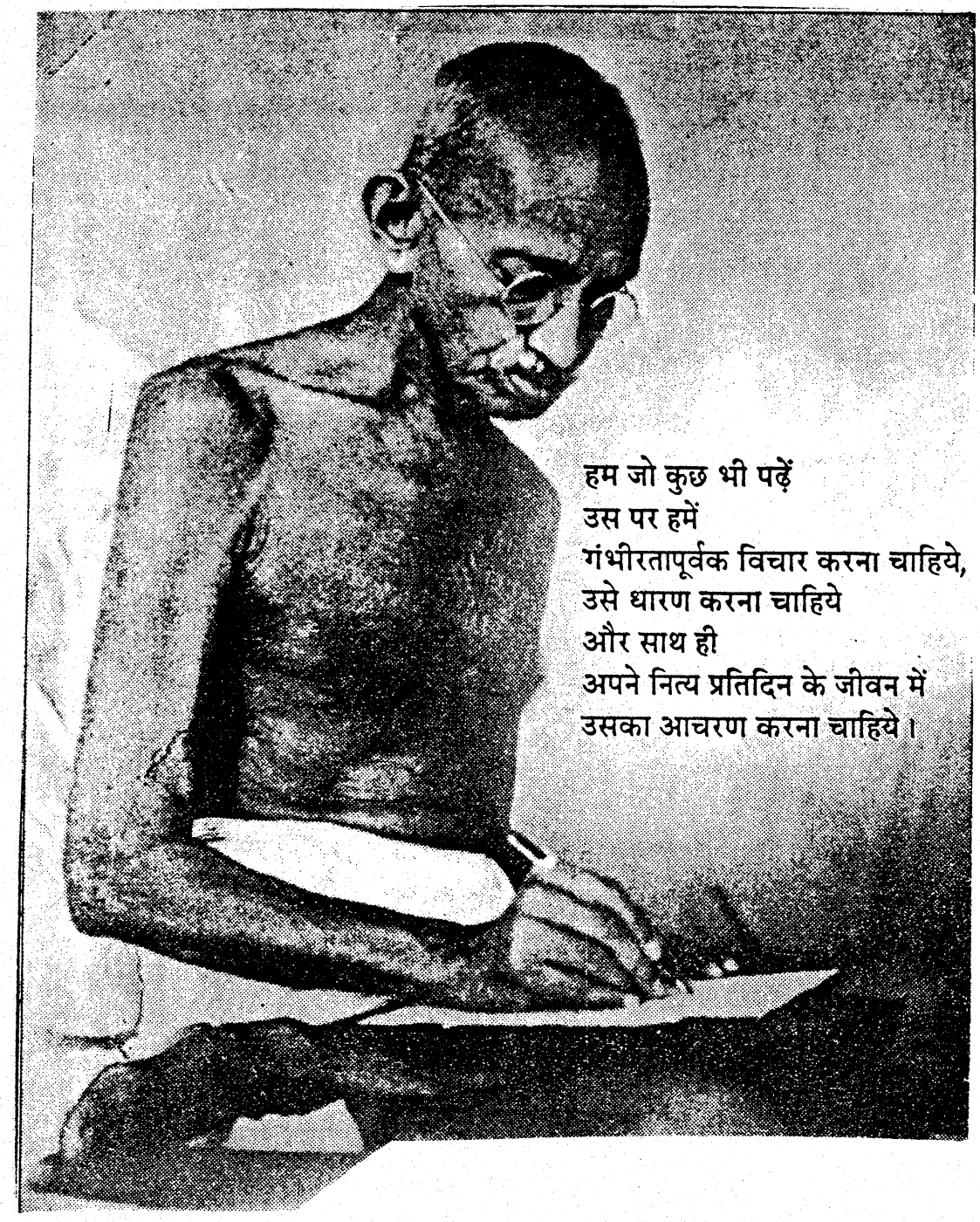

हम जो कुछ भी पढ़ें
उस पर हमें
गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिये,
उसे धारण करना चाहिये
और साथ ही
अपने नित्य प्रतिदिन के जीवन में
उसका आचरण करना चाहिये।